माँ-बाप के अधिकार

और

रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक

लेखक

सैयद लुत्फ़ुल्लाह क़ादरी फ़लाही

अनुवादक

डॉ. पी. एच. चौबे

विषय-सूची

- लेखक का निवेदन 5
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का हुक्म 7
- ग़ैर-मुस्लिम माँ-बाप के साथ भी अच्छा सुलूक 9
- औलाद और उसकी कमाई पर बाप का हक़ है 12
- माँ-बाप के एहसानों का बदला देना नामुमकिन है 12
- माँ-बाप की इजाज़त के बिना जिहाद में शरीक होना हराम है 13
- बाप से ज़्यादा माँ अच्छे सुलूक की हक़दार है 14
- माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक की अहमियत 15
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना जिहाद से बढ़कर है 16
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक हज और उमरा के बराबर है 18
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक गुनाहों के लिए माफ़ी और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) है 19
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक जन्नत में प्रवेश का कारण होगा 20
- अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) बाप को राज़ी करने में है 22
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने की वजह से दुआ का क़बूल होना 23
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक उम्र और रोज़ी को बढ़ाता है 24
- माँ-बाप के लिए दुआ करना वाजिब (ज़रूरी) है 25
- माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का बदला दुनिया में मिलता है 30
- माँ-बाप पर ख़र्च करने की अहमियत 30
- माँ-बाप सो रहे हों तो उनको न जगाना अच्छा सुलूक है 31
- माँ-बाप के पास आने के लिए इजाज़त लेनी चाहिए 31
- माँ-बाप के लिए उठकर स्वागत करना जायज़ है 34

- माँ-बाप की मौत के बाद उनके लिए माफ़ी की दुआएँ माँगना नेकी है 35
- माँ-बाप की नाफ़रमानी बहुत बड़ा गुनाह है 36
- माँ-बाप की तरफ़ से हज करना जाइज़ है 38
- माँ-बाप को नसीहत करना और उनके मार्गदर्शन के लिए दुआ करना 40
- माँ-बाप औलाद की जन्नत और दोज़ख़ हैं 44
- बाप जन्नत के दरवाज़ों में सबसे बेहतर दरवाज़ा है 44
- माँ-बाप को मेहरबान नज़रों से देखना क़बूल हो जानेवाले हज के बराबर है 44
- माँ-बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ करने से उनके दर्जों का बुलंद होना 45
- माँ-बाप की तरफ़ से सदक़ा करना नेकी है 45
- दूध पिलानेवाली माँ की इज़्ज़त व एहतिराम 46
- नाफ़रमान औलाद जन्नत में नहीं जाएगी 46
- माँ-बाप को गाली देना गुनाह है 47
- माँ-बाप को फिटकारनेवाला निन्दनीय है 48
- माँ-बाप को घूरकर देखना भी मना है 48
- माँ-बाप का क़त्ल करनेवाले को सख़्त अज़ाब मिलेगा 49
- हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की दस शिक्षाएँ 49
- माँ-बाप को सतानेवाली औलाद को दुनिया में ही सज़ा 51
- नाफ़रमान औलाद के लिए एक आख़िरी अवसर 51
- सिलारहमी 52
- पड़ोसी का हक़ 61
- साथियों के हक़ 62
- राहगीर का हक़ 63
- ग़ुलाम, बांदी और सेवकों का हक़ 63

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बहुत रहमवाला बड़ा मेहरबान है।'

लेखक का निवेदन

इस्लाम एक मुकम्मल निज़ामे हयात (सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था) है। पूरी ज़िन्दगी का एक प्रोग्राम है। घर से लेकर मस्जिद तक, मस्जिद से बाज़ार तक, बाज़ार से सदन तक, सदन से न्यायालय तक। कहने का मतलब यह है कि ज़िन्दगी का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें इस्लाम की हिदायत और रहनुमाई मौजूद न हो। क़ुरआन व सुन्नत की रहनुमाई को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है। एक हिस्सा अल्लाह के हक़ों का है जिसमें अल्लाह के हक़ों के बारे में तफ़सील से बताया गया है और दूसरा हिस्सा बन्दों के हक़ों का है जिसमें बन्दों के हक़ों की तफ़सील बयान की गई है।

क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और याद करो जब कि हमने बनी इसराईल से वचन लिया कि अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करोगे, माँ-बाप के साथ एहसान करोगे, रिश्तेदारों, मिस्कीनों और यतीमों को उनका हक़ दोगे।" (क़ुरआन, 2 : 83)

बनी इसराईल की तरह मुसलमानों से भी अल्लाह ने यही वचन लिया है कि वह अल्लाह ही की इबादत करें और उसके साथ किसी को साझी न ठहराएँ। माँ-बाप और तमाम नज़दीकी रिश्तेदारों के हक़ अदा करें। अल्लाह के हक़ के बाद तुरन्त माँ-बाप के हक़ का ज़िक्र इस बात का सुबूत है कि अल्लाह के बाद इंसान पर सबसे बड़ा हक़ (अधिकार) अगर किसी का है तो वह माँ-बाप का है। माँ-बाप के बाद दूसरे रिश्तेदारों, दोस्तों और आम लोगों के हक़ हैं।

ये हक़ अल्लाह तआला ने अपने बन्दों पर फ़र्ज़ किए हैं। इनको अदा करना हर मुसलमान के लिए ज़रूरी है, और जो लोग इस फ़र्ज़ को अदा करते हैं उनके लिए अल्लाह के पास बड़ा इनाम है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"जो लोग अपने माल अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं फिर

अपने उस ख़र्च के बाद एहसान जताने और तकलीफ़ पहुँचाने की बला नहीं लगा देते उनके लिए उनके रब के पास इनाम है। न उनके लिए डर होगा और न वे दुखी होंगे। दस्तूर के मुताबिक़ एक अच्छा बोल बोलना और माफ़ कर देना उस सदक़े से अच्छा है जिसके पीछे दिल को तकलीफ़ पहुँचानेवाली बला लगी हुई हो। अल्लाह बड़ा (निस्पृह बेनियाज़) और सहनशील है।"

(क़ुरआन, 2 : 262-263)

आज मुस्लिम समाज़ में अल्लाह तआला और बन्दों के हक़ों को रौंदा जाना आम हो चुका है। मस्जिदें अपने नमाज़ियों को ढूँढ़ रही हैं। ख़ानदानी ज़िन्दगी टूट-फूट रही है। ताक़तवर कमज़ोरों के हक़ मारे बैठा है। यतीमों और बेवाओं के साथ बुरा सुलूक करना आम हो चुका है। माँ-बाप को बोझ समझकर उनके साथ बुरा सुलूक किया जा रहा है। इस्लाम की दृष्टि में यह एक संगीन जुर्म और बहुत बड़ा गुनाह है जिसकी सज़ा दुनिया व आख़िरत में मिलकर रहेगी।

समाज में यह जो बिगाड़ आया है वह अधिकारों को कुचलने, रिश्तों को जोड़ने के बजाय उन्हें काटने, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव और दीन (धर्म) की जानकारी न होने के कारण आया है।

मैंने मुसलमानों को अमल पर उभारने के लिए माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक से मुताल्लिक़ क़ुरआन की आयतों और हदीसों को इस मुख़्तसर (संक्षिप्त) किताब में जमा करने की कोशिश की है। इस किताब में माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का इनाम और उनके साथ बुरा सुलूक करने की सज़ा और डरावे — दोनों तरह की बातें जमा की गई हैं। आख़िर में दूसरे रिश्तेदारों के हक़ों पर भी संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया है।

अल्लाह तआला से दुआ है कि इस मामूली-सी कोशिश को लेखक की कामयाबी का ज़रिया बनाए और सभी लोगों को इससे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठाने और इन क़ुरआनी आयतों और नबी (सल्ल०) की हदीसों पर चलने की तौफ़ीक़ (सौभाग्य) दे। आमीन!

सैयद लुत्फ़ुल्लाह क़ादरी

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का हुक्म

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग उसके सिवा किसी की इबादत न करो। माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो। अगर तुम्हारे पास उनमें से कोई एक या दोनों बूढ़े होकर रहें तो उन्हें 'उफ़' तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे अदब के साथ बात करो और नर्मी व रहम के साथ उनके सामने झुककर रहो और दुआ किया करो कि पालनहार, इनपर रहम कर जिस तरह इन्होंने रहमत और मुहब्बत के साथ मुझे बचपन में पाला था।" (क़ुरआन, 17 : 23-24)

अल्लाह तआला इंसान को वुजूद में लाता है। माँ-बाप तो उसकी पैदाइश का ज़ाहिरी ज़रिया हैं। इसलिए अल्लाह तआला के हक़ों के साथ-साथ माँ-बाप के हक़ों (अधिकारों) का ज़िक्र भी किया गया।

अल्लाह तआला के एहसानों का बदला यह है कि इंसान तौहीद (ऐकेश्वरवाद) अपनाए। केवल अल्लाह की इबादत करे। और उसकी इबादत में किसी को साझी न ठहराए। माँ-बाप के एहसानों का बदला यह है कि इंसान उनके साथ अच्छा सुलूक करे, उनके बुढ़ापे में उनकी ख़िदमत करे। बड़ी ख़ुशक़िस्मत है वह औलाद जो बूढ़े माँ-बाप की ख़िदमत व फ़रमाँबरदारी से जी न हारे। क़ुरआन ने सचेत किया है कि झिड़कना, डाँटना तो एक तरफ़, उनको ज़बान से 'उफ़' भी मत कहो, बल्कि बात करते वक़्त पूरे अदब व एहतिराम को ध्यान में रखो। इंसान के बस में नहीं है कि वह माँ-बाप के एहसानों को चुका सके मगर जहाँ तक हो सके उसको कोशिश करनी चाहिए और अल्लाह तआला से दुआ करते रहना चाहिए कि इस बुढ़ापे में और मौत के बाद वह उनपर रहम करे और उनकी मग़फ़िरत फ़रमाए।

माँ-बाप के साथ एहसान करने का हुक्म दिया गया है। एहसान अपने

व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। एहसान का अर्थ यहाँ अच्छा बर्ताव, मामलों में कुशादगी, हमदर्दी भरा सुलूक, उदारता, अच्छा स्वभाव, ग़लतियों को अनदेखा करने, एक-दूसरे को छूट देने, एक-दूसरे का ख़याल रखने, दूसरे को उसके हक़ से कुछ ज़्यादा देने और ख़ुद अपने हक़ से कुछ कम पर राज़ी हो जाने के हैं।

अच्छे सुलूक में अदब, एहतिराम, फ़रमाँबरदारी, रज़ामन्दी और ख़िदमत—सब आते हैं। माँ-बाप के इस हक़ को क़ुरआन में हर जगह तौहीद के बाद बयान किया गया है। इससे साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि ख़ुदा के बाद बन्दों के हक़ों में सबसे पहला हक़ इंसान पर उसके माँ-बाप का है।

क़ुरआन की उक्त आयत से यह साबित होता है कि माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना और उनका हुक्म मानना कितना ज़रूरी और अहम है। क्योंकि अल्लाह तआला अपने बन्दों को आदेश दे रहा है कि उस अल्लाह की इबादत करो और माँ-बाप के साथ अच्छा व्यवहार करो। उसूले-फ़िक़ह (धार्मिक नियम) की किताबों में किसी चीज़ का हुक्म देना उसके फ़र्ज़ होने या वाजिब होने को कहते हैं।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) के पास आया और उसने कहा कि आप मुझे क्या आदेश देते हैं। आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी माँ के साथ अच्छा सुलूक करो।" उसने फिर यही सवाल दोहराया तो आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी माँ के साथ अच्छा सुलूक करो।" तीसरी बार फिर उसने यही सवाल किया तो आपने कहा, "अपनी माँ के साथ अच्छा सुलूक करो।" जब उसने चौथी बार यही सवाल किया तो आप (सल्ल०) ने कहा, "अपने बाप के साथ अच्छा सुलूक करो।" (हदीस : अल अदबुल-मुफ़रद)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल०)की ख़िदमत में हिजरत पर बैअत करने के लिए हाज़िर हुआ और निवेदन किया कि मैं आप (सल्ल०) से हिजरत पर बैअत करने के लिए हाज़िर हुआ हूँ और मैंने अपने माँ-बाप को इस हालत में छोड़ा है कि वे मेरी जुदाई के कारण रो रहे थे। आप (सल्ल०)

ने कहा कि उनके पास लौट जा और उनको हँसा जैसा कि तूने उनको रुलाया है। (हदीस : अल अदबुल मुफ़रद, हाकिम, मुस्तदरक)

नबी (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारी जुदाई ने उन दोनों को रुलाया है। तुम उनसे जाकर मिल जाओ कि उनके आँसू ख़ुशी में बदल जाएँ और उनके चेहरे तुम्हारी मौजदूगी से दुबारा खिल उठें।"

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) स्वयं बहुत ही रहीम और मेहरबान थे। आपने उस तकलीफ़ का एहसास कर लिया था जो उसके माँ-बाप को उसकी जुदाई से पहुँची थी। यदि आप इस स्थिति में उस व्यक्ति से हिज़रत पर बैअत ले लेते तो यह अमल (व्यवहार) आपकी उस रहमत के विपरीत होता जिसके विषय में अल्लाह तआला ने कहा है कि—

"हमने आपको लोगों के लिए रहमत बनाकर भेजा है। और वे मोमिनों के साथ मेहरबान हैं।"

इमाम नववी (रह०) ने हदीस की किताब सहीह मुस्लिम की टीका में लिखा है कि उलमा इसपर एक मत हैं कि माँ-बाप की इताअत वाजिब है। और उनकी नाफ़रमानी हराम और बड़ा गुनाह है।

ग़ैर-मुस्लिम माँ-बाप के साथ भी अच्छा सुलूक

क़ुरआन में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और इंसान को हमने माँ-बाप के सम्बन्ध में ताकीद की है (कि उनकी सेवा और आज्ञापालन करे, क्योंकि उन्होंने ख़ास तौर पर उसकी माँ ने उसके लिए बड़ी परेशानियाँ उठाई हैं, अत:) उसकी माँ ने कमज़ोरी पर कमज़ोरी सहकर उसको पेट में रखा, और दो वर्ष में उसका दूध छूटता है (इन दिनों में भी माँ उसकी हर तरह की सेवा करती है और बाप भी अपनी स्थिति के अनुसार परेशानी उठाता है, इसलिए हमने अपने हक़ों के साथ माँ-बाप के हक़ भी अदा करने का आदेश दिया) कि तू मेरी और अपने माँ-बाप की शुक्रगुज़ारी किया कर। मेरी तरफ सबको लौटकर आना है। और यदि वे दोनों तुझपर ज़ोर डालें कि तू मेरे साथ किसी ऐसी चीज़ को साझी ठहराए जिसको तू नहीं जानता, तो तू उनका कहना न मानना और दुनिया में उनके साथ भले तरीक़े से रहना और उस व्यक्ति की राह पर चलना जो मेरी ओर

रुजू (उन्मुख) हो। फिर तुम सबको मेरी तरफ़ आना है। फिर मैं तुमको बतला दूँगा जो कुछ तुम करते थे।''

(क़ुरआन, 31 : 14-15)

क़ुरआन में एक दूसरी जगह आया है—

''और हमने इंसान को उसके माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का हुक्म दिया है और (इसके साथ यह भी जता दिया है कि) यदि वे दोनों तुझपर इस बात का ज़ोर डालें कि तू ऐसी चीज़ को मेरा साझी ठहराए जिसके माबूद (पूज्य) होने का कोई प्रमाण तेरे पास नहीं, तो (इस बारे में) उनका कहना न मानना। तुम सबको मेरे पास लौटकर आना है, फिर मैं तुमको बता दूँगा कि तुम क्या करते रहे हो।'' (क़ुरआन, 29 : 8)

ऊपर बयान की गई क़ुरआन की दोनों आयतों में अल्लाह तआला ने आदेश दिया है कि माँ-बाप चाहे मुस्लिम हों या ग़ैर-मुस्लिम, उनके साथ अच्छा बर्ताव और अच्छा व्यवहार करो। जब तक वे ज़िन्दा रहें उनके साथ नेक बर्ताव करो। यदि वे अल्लाह के साथ शिर्क करने का हुक्म दें तो उनका यह हुक्म न मानो। इस विषय में हज़रत सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) ने अपना वाक़िआ बयान किया है, जिसको हदीस की किताब सहीह मुस्लिम में उनके बेटे हज़रत मुसअब बिन सअ्द (रज़ि०) से रिवायत किया गया है।

हज़रत सअ्द बिन अबी वक़्क़ास (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं अपनी माँ का बहुत ही फ़रमाँबरदार बेटा था। जब मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया तो मेरी माँ ने मुझसे कहा कि ऐ सअ्द, तुमने यह क्या नया दीन (धर्म) अपना लिया है, इस दीन को छोड़ दो और जब तक तुम ऐसा न करोगे मैं न खाऊँगी और न पीऊँगी यहाँ तक की मैं भूख से मर जाऊँ, अर्थात उनकी माँ ने अपनी बात मनवाने के लिए भूख हड़ताल शुरू कर दी।

लोग मुझे ग़ैरत और शर्म दिलाने लगे और माँ का क़ातिल कहकर पुकारने लगे। मैंने अपनी माँ को बहुत समझाया कि आप ऐसा न करें, मैं अपना दीन हरगिज़ नहीं छोड़ूँगा।

एक दिन और एक रात तक वे भूखी-प्यासी पड़ी रहीं जिससे उनकी कमज़ोरी बढ़ गई। फिर दूसरा दिन और रात भी उसी हालत में बीत गया, उनकी कमज़ोरी और ज़्यादा बढ़ गई। जब मैंने उनकी यह हालत देखी तो मैंने भी उनसे साफ़-साफ़ कह दिया कि ऐ मेरी माँ, ख़ुदा की क़सम अगर आपके जिस्म में एक सौ जानें हों और वे एक-एक करके निकलें तब भी मैं अपने इस दीन को नहीं छोड़ूँगा, आप चाहें तो खाना खा लें और न चाहें तो न खाएँ। जब मेरा यह मज़बूत इरादा देखा तो फिर उन्होंने अपनी ज़िद छोड़ दी और खाना खा लिया।

हज़रत अस्मा बिन्त अबी बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और मक्का के क़ुरैश के बीच होनेवाली सुलह हुदैबिया के ज़माने में मेरी माँ मेरे पास आईं। उस समय वे शिर्क करनेवालों में से थीं और मुझसे कुछ आर्थिक सहायता चाहती थीं। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा, "क्या मैं अपनी माँ के साथ अच्छी तरह से पेश आऊँ?" आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ तुम अपनी माँ के साथ अच्छा सुलूक करो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इन दो घटनाओं के बाद अल्लाह तआला की तरफ़ से भी साफ़ और खुली हिदायत क़ुरआन मजीद में नाज़िल कर दी गई—

> "अल्लाह तआला तुम्हें इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ नेकी और इंसाफ़ का बर्ताव करो जिन्होंने दीन (धर्म) के विषय में तुमसे जंग (युद्ध) नहीं की है और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला है। अल्लाह इंसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।" (क़ुरआन, 60 : 8)

इससे मालूम होता है कि ग़ैर-मुस्लिम माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने, सेवा करने, आर्थिक सहयोग देने और अच्छे बर्ताव में कंजूसी न करें। अलबत्ता उनके वे आदेश न मानें जिससे अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की नाफ़रमानी होती हो। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का इरशाद है कि किसी मख़लूक़ की कोई फ़रमाँबरदारी पैदा करनेवाले की नाफ़रमानी में नहीं है, यानी माँ-बाप हों या पीर व मुर्शिद (आध्यात्मिक गुरु) या उस्ताद हो, या किसी जमाअत का अमीर (अध्यक्ष) हो या कोई भी बड़ी शख़्सियत हो, उनकी इताअत और फरमाँबरदारी केवल उसमें है जिसमें कायनात के बनानेवाले ख़ुदा की नाफ़रमानी न होती हो।

औलाद और उसकी कमाई पर बाप का हक़ है

हज़रत जाबिर (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे पास माल और औलाद है और मेरे बाप मेरे माल को बरबाद कर देना चाहतें हैं। आप (सल्ल०) ने कहा, " तुम और तुम्हारे माल, दोनों के मालिक तुम्हारे बाप हैं।" (हदीस : इब्ने माजा, तबरानी)

इस हदीस से साबित होता है कि माँ-बाप को अपनी औलाद के माल व सामान को ख़र्च व इस्तेमाल करने का पूरा हक़ है।

माँ-बाप के एहसानों का बदला देना नामुमकिन है

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा है, "औलाद अपने माँ-बाप के एहसानों का बदला नहीं चुका सकती, अगर वह उनको ग़ुलाम पाए और उनको ख़रीदकर आज़ाद कर दे तब भी उनके एहसानों का बदला नहीं उतर सकता।"

(हदीस : मुस्लिम, तिर्मिज़ी, अल-अदबुल-मुफ़रद)

इस्लाम में किसी ग़ुलाम को ख़रीद कर आज़ाद कर देने का बहुत बड़ा सवाब है। लेकिन इस कार्य से भी माँ-बाप के एहसानों से औलाद आज़ाद नहीं हो सकती। गर्भावस्था से लेकर पैदा होने तक और पैदाइश से लेकर जवानी तक माँ-बाप जो परेशानियाँ उनके लिए सहन करते हैं, उनके पालन-पोषण, देख-भाल, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका स्वास्थ्य और बीमारी के लिए वे जो परेशानियाँ उठाते हैं, उन सबका बदला चुका देना औलाद के लिए असम्भव है।

हज़रत सईद (रज़ि०) अपने बाप अबू बरदा (रज़ि०) से नक़ल करते हैं कि "मैंने अपने वालिद को यह कहते हुए सुना कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) ने एक यमनी आदमी को देखा कि वह अपनी पीठ पर अपनी माँ को बिठाए हुए ख़ाना काबा (अल्लाह के घर) का तवाफ़ (परिक्रमा) कर रहा है और यह शेर पढ़ रहा है कि "मैं इनका फ़रमाँबरदार ऊँट हूँ, यद्यपि ऊँट अपने सवार को डराता है लेकिन मैं इनको डराता नहीं हूँ।"

फ़िर उस व्यक्ति ने कहा, "ऐ इब्ने उमर, आप की क्या राय है, क्या माँ के एहसानों का बदला मेरे इस अमल (कार्य) से उतर जाएगा?" इब्ने उमर (रज़ि०) ने उत्तर दिया, "नहीं, हरगिज़ नहीं, यह अमल तो बच्चे के जन्म के समय जो औरत को प्रसव-पीड़ा होती है उसकी एक आह या उसकी एक सांस के बराबर भी नहीं है।

माँ-बाप की इजाज़त के बिना जिहाद में शरीक होना हराम है

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी (रज़ि०) से रिवायत है कि यमनवालों में से एक व्यक्ति हिजरत करके अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ। आपने उससे पूछा, "क्या यमन में तुम्हारा कोई रिश्तेदार है?" उसने कहा, "मेरे माँ-बाप ज़िन्दा हैं।" आप (सल्ल०) ने पूछा, "उन्होंने तुम्हें इजाज़त दी है?" उसने कहा, "नहीं।" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम उन दोनों के पास वापस जाओ और उनसे इजाज़त माँगो। अगर वे तुम्हें इजाज़त दें तो जिहाद में शामिल हो और अगर इजाज़त न दें तो तुम उनकी सेवा करो और उनके साथ अच्छा सुलूक करते रहो।"

(हदीस : अबू दाऊद, इब्ने हिब्बान)

हाफ़िज़ इब्ने हजर (रह०) ने फ़तहुलबारी में लिखा है कि अधिकतर उलमा (धार्मिक विद्वानों) की राय है कि अगर माँ-बाप मना कर दें या उनमें से एक इजाज़त न दे तो इस हालत में जिहाद में शरीक होना हराम है, इस शर्त के साथ कि माँ-बाप मुसलमान हों। माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना और उनके हक़ों को अदा करना 'फ़र्ज़े ऐन' (मुख्य कर्त्तव्य) है और जिहाद 'फ़र्ज़े किफ़ाया' है। 'फ़र्ज़े किफ़ाया' यह है कि कुछ लोगों के अदा कर देने से सबकी तरफ़ से अदा हो जाता है। हाँ जब हालात ऐसे हो जाएँ जिनमें जिहाद फ़र्ज़ ऐन हो जाए तो फिर इजाज़त नहीं माँगी जाएगी।

इमाम नववी (रह०) ने हदीस की किताब सहीह मुस्लिम की तफ़सीर (व्याख्या) में लिखा है कि अबू मुहम्मद बिन अब्दुस्सलाम (रह०) माँ-बाप की इजाज़त के बिना औलाद पर जिहाद को हराम ठहराते थे, क्योंकि

जिहाद में उनके शहीद होने या उनके अंगों में से किसी अंग के कट जाने से उन्हें कष्ट पहुँच सकता है।

ऐनी ने उम्दतुलक़ारी में लिखा है कि ज़्यादातर उलमा (धार्मिक विद्वान) जिनमें इमाम औज़ाई (रह०), इमाम सौरी (रह०), इमाम मालिक (रह०), इमाम शाफ़ई (रह०) और इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) हैं, की राय में माँ-बाप की इजाज़त के बिना कोई व्यक्ति जिहाद में शामिल नहीं होगा सिवाय इसके कि दुश्मन की ताक़त बहुत ज़्यादा हो और ज़रूरत और हालात का तक़ाज़ा हो कि वह जिहाद में शामिल हो तो ऐसी हालत में जिहाद फ़र्ज़े किफ़ाया नहीं बल्कि फ़र्ज़े ऐन हो जाता है और उस समय माँ-बाप से इजाज़त लेने की ज़रूरत नहीं होती।

बाप से ज़्यादा माँ अच्छे सुलूक की हक़दार है

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, रिश्तेदारों में अच्छे सुलूक का सबसे ज़्यादा कौन हक़दार है?" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारी माँ।" उसने निवेदन किया, "फिर कौन है?" "आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारी माँ।" उसने कहा, "फिर कौन है?" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारी माँ।" उसने पूछा, "फिर कौन है?" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम्हारा बाप।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इब्ने बत्ताल इस हदीस की व्याख्या करते हैं कि इसका भावार्थ यह है कि अच्छे सुलूक में माँ के लिए तीन दर्जे हैं और बाप के लिए एक दर्जा है। उन्होंने दर्जों की तफ़्सील इस तरह बयान की है कि माँ बच्चे की पैदाइश में तीन दर्जों की परेशानियाँ झेलती है। पहले गर्भ की तकलीफ़, दूसरे पैदाइश की तकलीफ़ और तीसरे दूध पिलाने की तकलीफ़ और यही तीन तरह की तकलीफ़ें माँ को बाप पर श्रेष्ठता प्रदान करती हैं। इन तीन तरह की तकलीफ़ों की चर्चा क़ुरआन की इस आयत में की गई है कि—

> "और यह हक़ीक़त है कि हमने इंसान को अपने माँ-बाप का हक़ पहचानने की ख़ुद ताकीद की है। उसकी माँ ने कमज़ोरी पर कमज़ोरी उठाकर उसे अपने पेट में रखा और दो साल उसके

दूध छोड़ने में लगे।" (क़ुरआन, 31 : 14)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हदीस इस क़ुरआनी आयत की व्याख्या है। वास्तव में माँ को अच्छे सुलूक में, उसके प्रति कर्तव्यों के पालन में और मुहब्बत व मेहरबानी में सब पर प्राथमिकता प्राप्त है। बाप को अदब व एहतिराम और आज्ञापालन में माँ पर प्राथमिकता प्राप्त है, क्योंकि वह ख़ानदान का सरदार और मुखिया है।

माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक की अहमियत

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा, "कौन-सा अमल (कार्य) अल्लाह के निकट सबसे अधिक पसन्दीदा है? " एक रिवायत में है कि कौन-सा अमल सबसे अधिक श्रेष्ठतावाला है। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नमाज़ (अपने निश्चित समय पर)।" मैंने कहा, "फिर कौन-सा अमल?" आप (सल्ल०) ने कहा, "माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक।" मैंने निवेदन किया, "फिर इसके बाद कौन-सा अमल?" आप (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह की राह में जिहाद।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई)

कुछ हदीसों में कुछ दूसरी चीज़ों को उत्तम माना गया है। मिसाल के तौर पर कुछ हदीसों में अल्लाह पर ईमान को अहमियत दी गई है, कुछ में हज को और कुछ में ग़रीबों को खाना खिलाने को सबसे श्रेष्ठ कहा गया है।

इसलिए सवाल पैदा होता है कि वास्तव में कौन-सा कार्य सबसे अधिक श्रेष्ठ है। इस प्रश्न का उत्तर हाफ़िज इब्ने हजर असक़लानी (रह०) ने अपनी मशहूर किताब फ़तहुलबारी में दिया है। उन्होंने इस तरह की तमाम हदीसों को जमा करने के बाद लिखा है कि इस मामले में उलमा (मुस्लिम विद्वानों) की राय यह है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हर सवाल करनेवाले को उसके हालात के मुताबिक़ जवाब दिया है,क्योंकि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) लोगों के मिज़ाज को अच्छी तरह पहचानते थे और हर एक की ज़रूरतों से अच्छी तरह परिचित थे और आप (सल्ल०) को उनके बारे में मालूम रहता था कि वे किन चीज़ों से ज़्यादा लगाव रखते हैं।

इसका दूसरा जवाब यह है कि इस तरह की हदीसों में जो परस्पर विरोध पाया जाता है वह वक़्त और हालात का फ़र्क़ है। यानी जिस वक़्त

सवाल किया गया उस वक़्त वही काम ज़्यादा अहम था।

इसके अलावा ख़ुद हदीसें एक-दूसरे की व्याख्या हैं। मिसाल के तौर पर नमाज़ सदक़े से बढ़कर है, लेकिन कुछ हालात में एक परेशान व्यक्ति की सहायता करना नमाज़ से भी बढ़कर काम है। इन हदीसों के अध्ययन के बाद यह बात समझ में आती है कि यहाँ श्रेष्ठ (अफ़ज़ल) से तात्पर्य केवल श्रेष्ठ बताना मक़सद है। किसी इबादत को दूसरी इबादत के मुक़ाबले में कम स्थान पर रखने का मक़सद हरगिज़ नहीं है।

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना जिहाद से बढ़कर है

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (रज़ि०) से रिवायत है कि एक आदमी नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और आप (सल्ल०) से जिहाद में शामिल होने की आज्ञा माँगी, आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुम्हारे माँ-बाप ज़िन्दा हैं ?" उसने कहा, "हाँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "उन दोनों की सेवा करना ही तुम्हारा जिहाद है, इसलिए यही जिहाद करो"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अहमद, तिरमिज़ी)

हाफ़िज़ इब्ने हजर (रह०) फ़तहुलबारी में इस हदीस की व्याख्या करते हैं कि तुम्हारे माँ-बाप ज़िन्दा हैं तो तुम उनके साथ अच्छा सुलूक करो, उनके हक़ अदा करो, उनकी सेवा करो, यही अमल (व्यवहार) तुम्हारे लिए दुश्मन से जिहाद करने के बराबर हो जाएगा। एक दूसरी जगह लिखा है कि माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना जिहाद से बढ़कर है। यह उसी हालत में है जब जिहाद फ़र्ज़े किफ़ाया हो (अर्थात कुछ लोगों के अदा करने से अदा हो जाए)।

हज़रत मुआविया बिन जाहिमा सलमी से रिवायत है कि उनके बाप जाहिमा (रज़ि०) रसूल (सल्ल०) के पास आए और कहा कि "ऐ अल्लाह के रसूल, मैंने निश्चय किया है कि जंग (युद्ध) में हिस्सा लूँ और आपसे मशविरा चाहता हूँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुम्हारी माँ ज़िन्दा है ?" उन्होंने ने कहाँ, "हाँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "बस उनकी सेवा में लगे रहो, क्योंकि जन्नत माँ के क़दमों के नीचे है।"

(हदीस : अहमद, नसई)

इब्ने माजा (रह०) ने इस हदीस को दूसरे शब्दों में बयान किया है और वह इस तरह है कि हज़रत मुआविया बिन जाहिमा (रज़ि०) कहते हैं कि "मैं नबी (सल्ल०) के पास हाज़िर हुआ और मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल मैंने आप के साथ जिहाद में शरीक होने का निश्चय किया है और उससे मैं अल्लाह की रिज़ा और आख़िरत में कामयाबी चाहता हूँ। आप (सल्ल०) ने कहा, "भला हो तुम्हारा! क्या तुम्हारी माँ ज़िन्दा है?" मैंने कहा, "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल।" आप (सल्ल०) ने कहा, "लौट जाओ और अपनी माँ का हक़ अदा करो!" मैं आपके पास दूसरी सिम्त से आया और यही निवेदन किया। आप (सल्ल०) ने कहा, "अपनी माँ का हक़ अदा करो। फिर मैं आप (सल्ल०) के सामने आया और यही अर्ज़ किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तेरा भला हो, तू माँ की सेवा में लगा रह। जन्नत माँ के क़दमों के नीचे है।"

तबरानी के शब्द ये हैं—

हज़रत मुआविया बिन जाहिमा (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास जिहाद में शरीक होने के लिए आया। रसूल (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुम्हारे माँ-बाप ज़िन्दा हैं?" मैंने कहा "हाँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "उन दोनों की सेवा में लगे रहो, जन्नत उन दोनों के क़दमों के नीचे है।"

क़दमों में जन्नत होने का अर्थ यह है कि माँ-बाप के साथ बेहद नर्मी और अदब व एहतिराम के साथ अच्छा सुलूक किया जाए। उनका हुक्म माना जाए और उनकी फ़रमाँबरदारी करने में बेहतरीन तरीक़ा अपनाया जाए। उनकी सेवा में लगा रहा जाए और उन्हें 'उफ़' तक न कहा जाए। अल्लाह तआला कहता है कि "और नर्मी और रहम के साथ उनके सामने झुककर रहो।" (क़ुरआन, 17 : 23) सन्तान को उसके इस आचरण से अल्लाह ने चाहा तो जन्नत प्राप्त होगी।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) से रिवायत है कि एक आदमी अल्लाह के नबी (सल्ल०) के पास आया और उसने कहा, "मैं आप (सल्ल०) के मुबारक हाथ पर हिजरत और जिहाद के लिए

बैअत करना चाहता हूँ और इससे मैं केवल अल्लाह का अज्र (इनाम) चाहता हूँ।'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''क्या तुम्हारे माँ-बाप में से कोई ज़िन्दा है?'' उसने कहा, ''हाँ, बल्कि दोनों ज़िन्दा हैं।'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''तुम अल्लाह से इनाम चाहते हो?'' उसने कहा, ''हाँ।'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''तब तुम अपने माँ-बाप के पास चले जाओ, उनकी सेवा करो और उनके साथ अच्छा सुलूक करो।'' (हदीस : मुस्लिम)

इमाम नववी (रह०) ने सहीह मुस्लिम की तफ़्सीर में लिखा है कि यह हदीस माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने की अहमियत की दलील है और इसमें माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक को जिहाद से ज़्यादा अहम बताया गया है।

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक हज और उमरा के बराबर है

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) से रिवायत है कि एक आदमी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और उसने कहा कि ''ऐ अल्लाह के रसूल, मैं जिहाद में शामिल होने की इच्छा रखता हूँ लेकिन सामर्थ्य नहीं है।'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''क्या तुम्हारे माँ-बाप में से कोई ज़िन्दा है।'' उसने कहा, ''मेरी माँ ज़िन्दा है।'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''बस, तो अपनी माँ की ख़िदमत और उनकी फ़रमाँबरदारी के बारे में अल्लाह से डरो। तुम उनके साथ नेक सुलूक करोगे तो ऐसे हो जाओगे जैसे तुमने हज कर लिया, उमरा कर लिया और जिहाद में भी शरीक हो गए।'' (हदीस : तबरानी, बैहक़ी)

इस हदीस से यह मालूम होता है कि माँ-बाप की सेवा करने, उनके साथ अच्छा सुलूक करने और उनको आराम पहुँचाने का इनाम हज, उमरा और जिहाद के इनाम के बराबर है।

एक दूसरी रिवायत में यह और कहा गया है कि अगर तुम्हारी माँ तुम्हें बुलाए तो उसकी पुकार का जवाब दो और उसके साथ अच्छा सुलूक करो। इस रिवायत को आधार बनाकर फ़ुक़हा (मुस्लिम धर्मशास्त्रियों) ने यह

'मसला' निकाला है कि अगर माँ-बाप या उनमें से कोई बुलाए और औलाद में से कोई मौजूद हो लेकिन फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ रहा हो तो फ़र्ज़ नमाज़ तोड़कर उनकी पुकार का जवाब दे और उनकी मदद के लिए दौड़ पड़े। यह उस हालत में है जब माँ-बाप को पाख़ाना-पेशाब जाने की ज़रूरत हो और उनके गिर जाने का डर हो या किसी और परेशानी में पड़ जाने का ख़तरा हो। अगर यह हालत न हो तो फ़र्ज़ नमाज़ नहीं तोड़नी चाहिए और अगर नफ़्ल नमाज़ हो तो हर हालत में नमाज़ तोड़ देनी चाहिए।

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक गुनाहों के लिए माफ़ी और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) है

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) का कहना है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि "मुझसे एक बड़ा गुनाह हो गया है, क्या उसके लिए तौबा का कोई उपाय है?" आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या तुम्हारी माँ ज़िन्दा हैं?" उसने कहा "नहीं।" आपने कहा, "क्या तुम्हारी ख़ाला ज़िन्दा हैं?" उसने कहा "हाँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "तो तुम उनके साथ अच्छा सुलूक करो।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अहमद, हाकिम)

इस हदीस में गुनाह की मग़फ़िरत के लिए सबसे पहले अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने सवाल करनेवाले से उसकी माँ के बारे में पूछा, अगर माँ ज़िन्दा होती तो फिर उसके साथ अच्छा सुलूक करना ही उसके गुनाह को माफ़ करा देता। लेकिन माँ के ज़िन्दा न रहने की अवस्था में फिर आपने माँ से जो सबसे ज़्याद क़रीबी रिश्तेदार है यानी ख़ाला (मौसी) (और ख़ाला को एक हदीस में माँ जैसी कहा गया है) के बारे में पूछा और कहा कि उसके साथ अच्छा सुलूक भी तुम्हारे गुनाह को माफ़ करा सकता है।

माँ के रिश्तेदारों में ख़ाला, मामूँ, नाना-नानी और उनकी औलाद और औलाद की औलाद के साथ अच्छा सुलूक करने और उनसे रिश्ता जोड़ने का हुक्म दिया गया है। रिश्ता जोड़ने वाले को इस दुनिया में भी यह लाभ मिलता है कि उसकी रोज़ी में अल्लाह तआला बरकत देता है और उसकी मुश्किलों को उसके लिए आसान कर देता है। इसलिए अपने नज़दीकी रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करना और उनसे रिश्ता जोड़े रखना चाहिए।

हज़रत अता बिन यसार फ़रमाते हैं कि अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) के पास एक आदमी आया और उसने कहा, "मैंने एक औरत को निकाह का पैग़ाम भेजा लेकिन उसने मुझसे निकाह करने से इंकार कर दिया और एक दूसरे आदमी के निकाह के पैग़ाम को क़बूल कर लिया, लेकिन मैंने धोखा देकर उस औरत का क़त्ल कर दिया, क्या मेरे लिए तौबा का कोई उपाय है?"

इब्ने अब्बास (रज़ि०) ने कहा, "तेरी माँ ज़िन्दा है?" उसने कहा "नहीं।" आपने कहा, "तुम अल्लाह से माफ़ी माँगो और उसकी क़ुरबत (सामीप्य) हासिल करने के लिए जो इबादत भी कर सकते हो करो।" अता बिन यसार कहते हैं कि इस घटना के बाद मैं इब्ने अब्बास (रज़ि०) के पास गया और उनसे पूछा कि "आपने उसकी माँ के विषय में क्यों पूछा था?" इब्ने अब्बास ने उत्तर दिया, "मैं माँ के साथ अच्छा सुलूक करने के अलावा कोई अमल नहीं जानता जो बन्दे को अल्लाह से ज़्यादा क़रीब कर दे।"

(अल अदबुल मुफ़रद, बैहक़ी)

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक जन्नत में प्रवेश का कारण होगा

हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं जन्नत में दाख़िल हुआ तो मैंने क़ुरआन पढ़ने की आवाज़ सुनी। मैंने पूछा कि यह कौन हैं, जवाब दिया गया कि यह हारिसा बिन नोमान हैं। तब अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का यही इनाम है। हज़रत हारिसा बिन नोमान (रज़ि०) अपनी माँ के साथ अच्छा सुलूक किया करते थे।

(हदीस : अहमद, नसई, बैहक़ी)

तैबी ने हदीस की किताब मिश्कात की व्याख्या में लिखा है कि नबी (सल्ल०) ने ख़ाब देखा और उसको अपने सहाबा के बीच बयान किया और जब आप हज़रत हारिसा बिन नोमान (रज़ि०) की घटना पर पहुँचे तब आपने वहाँ मौजूद लोगों को संबोधित करते हुए कहा, "यह है वह बुलन्द दर्जा जो माँ के साथ अच्छा सुलूक करने की वजह से प्राप्त हुआ! अगर तुम भी बुलन्द मक़ाम हासिल करना चाहते हो तो माँ-बाप के साथ अच्छा

सुलूक करो।''

हज़रत हारिसा बिन नोमान (रज़ि०) एक अंसारी सहाबी थे। इब्ने अब्दुल्लाह ने ''इसतीआब'' में लिखा है कि वे बद्र की जंग, उहुद की जंग और ख़न्दक़ की जंग में और अन्य जंगों में भी अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ शरीक हुए थे और वे एक प्रतिष्ठित सहाबी थे और हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि०) की ख़िलाफ़त के ज़माने में उनका इन्तिक़ाल हुआ।

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) का कहना है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''उसकी नाक मिट्टी में मिल जाए,'' फिर आपने कहा, ''उसकी नाक मिट्टी में मिल जाए।'' पूछा गया, ''कौन है वह व्यक्ति ऐ अल्लाह के रसूल?'' आप (सल्ल०) ने कहा, ''जिसने अपने माँ-बाप को बुढ़ापे की हालत में पाया या उनमें से एक को पाया फिर भी वह जन्नत में दाख़िल नहीं हुआ।''

(हदीस : मुस्लिम, अहमद)

इमाम तिरमिज़ी (रह०) और हाकिम (रह०) ने इस हदीस को कुछ अलफ़ाज़ बढ़ाकर बयान किया है। वे लिखते हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा, ''उस आदमी की नाक धूल में मिल जाए जिसके पास मेरा ज़िक्र किया गया और उसने मुझपर दुरूद व सलाम नहीं भेजा। उस व्यक्ति की नाक मिट्टी में मिल जाए जिसने रमज़ान का मुबारक महीना पाया और उसकी मग़फ़िरत के बिना महीना बीत गया। उस व्यक्ति की नाक मिट्टी में मिल जाए जिसने अपने माँ-बाप को बुढ़ापे की हालत में पाया और उनकी सेवा करके जन्नत में दाख़िल न हुआ।''

इमाम नववी (रह०) ने हदीस की किताब मुस्लिम की शरह (व्याख्या) में लिखा है कि नाक के मिट्टी में मिल जाने का अर्थ यह है कि वह आदमी अपमानित, तिरस्कृत और नाकाम व असफल हुआ।

चेतावनी देने और डराने का यह तरीक़ा अपनाकर लोगों को इसपर उभारा गया है कि माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक जन्नत में प्रवेश का कारण बनेगा और जो व्यक्ति इस अवसर को पाकर भी जन्नत में प्रवेश न कर सका तो फिर, उससे बढ़कर अपमानित व तिरस्कृत, असफल व नाकाम और बदक़िस्मत कोई नहीं है।

हज़रत जाबिर बिन सुमरा (रज़ि०) कहते हैं कि एक दिन नबी (सल्ल०)

मिम्बर पर आए और आप (सल्ल०) ने कहा, "आमीन, आमीन, आमीन," फिर आपने कहा, "हज़रत जिब्रील मेरे पास आए और कहा, "ऐ मुहम्मद! जिसने अपने माँ-बाप में से किसी एक को पाया और उनकी सेवा नहीं की और मर गया तो वह जहन्नम में दाख़िल हुआ। और अल्लाह ने उसको अपनी रहमत (दयालुता) से दूर कर दिया। कहो 'आमीन' तो मैंने कहा 'आमीन।' फिर कहा। ऐ मुहम्मद, जिसने रमज़ान का महीना पाया और रोज़े रखे बिना मर गया और उसकी मग़फ़िरत नहीं की गई तो वह जहन्नम में दाख़िल कर दिया गया और अल्लाह ने उसको अपनी रहमत से दूर कर दिया, कहो 'आमीन' मैंने कहा 'आमीन'। फिर कहा जिसके पास आपकी चर्चा की गई और उसने आपपर दुरूद व सलाम नहीं भेजा और मर गया तो वह जहन्नम में दाख़िल हुआ और अल्लाह ने उसको अपनी रहमत से दूर कर दिया। कहो 'आमीन', मैंने कहा 'आमीन'। इसे तबरानी ने अलग-अलग सनदों से रिवायत किया है। (हदीस : तबरानी)

अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) बाप को राज़ी करने में है

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) बाप को राज़ी करने में है और अल्लाह की नाराज़ी बाप की नाराज़ी में है।

(हदीस : तिरमिज़ी, तबरानी, बैहक़ी)

कहने का मतलब यह है कि औलाद अपने बाप को उसके साथ अच्छा सुलूक करके ख़ुश रखती है तो अल्लाह भी ऐसी औलाद से ख़ुश होता है और ऐसी औलाद को अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल होगी। और अगर औलाद बाप के साथ अच्छा सुलूक नहीं करती है, उसके हक़ों को अदा नहीं करती है तो निश्चय ही बाप ऐसी औलाद से ख़ुश नहीं होगा और अल्लाह तआला भी ऐसी औलाद से नाराज़ होगा, और ख़ुदा का नाराज़ होना बाप के नाराज़ होने से ज़्यादा भयानक और डरा देनेवाला है। (अल अदबुल मुफ़रद)

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने की वजह से दुआ का क़बूल होना

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते हुए सुना कि तुमसे पहले की उम्मत के तीन व्यक्ति एक सफ़र में साथ चले यहाँ तक कि रात आ गई और वे रात बिताने के लिए एक गुफा में दाख़िल हो गए। अचानक पहाड़ की एक चट्टान अपनी जगह से गिरी और गुफा के मुँह पर आकर रुक गई जिससे गुफा का रास्ता बन्द हो गया। उन्होंने कहा कि इस चट्टान से छुटकारा नहीं मिल सकता सिवाय इसके कि सब अपने-अपने अच्छे कर्मों का वास्ता देकर अल्लाह से दुआ करें।

उनमें से एक आदमी ने कहा, "ऐ परवरदिगार! मेरे माँ-बाप बूढ़े थे और मैं पहले उन्हें दूध पिलाता था उसके बाद अपने बाल-बच्चों को दूध देता। एक दिन मवेशी चराते-चराते जंगल से घर लौटने में मुझे देर हो गई और मेरे माँ-बाप सो गए। मैंने उन दोनों के लिए दूध दुहा, लेकिन उनको जगाना उचित न समझा और यह बात भी मुझे पसन्द नहीं आई कि उनसे पहले अपने बाल-बच्चों को दूध पिलाऊँ। मेरे हाथ में दूध का प्याला था और मैं सिरहाने बैठा उनके जागने का इन्तिज़ार करता रहा यहाँ तक कि सुबह हो गई।

हदीस की किताब सहीह बुख़ारी की रिवायत में इतना और लिखा है कि "और भूख से मेरे बच्चे मेरे क़दमों में रो रहे थे। फिर वे दोनों (माँ-बाप) जागे और उन्होंने दूध पिया।" उस व्यक्ति ने अपनी यह नेकी याद की और यूँ दुआ की, "ऐ अल्लाह! अगर मैंने यह काम तेरी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए किया था तो हमें इस चट्टान की परेशानी से मुक्ति दिला दे।"

चट्टान अपनी जग से थोड़ी-सी हट गई, लेकिन अभी रास्ता इतना नहीं बना था कि वे उससे बाहर निकल सकते। इस लम्बी हदीस में दूसरे और तीसरे व्यक्ति ने भी नेक अमल (अच्छे कर्म) की चर्चा करके ख़ुदा से दुआ माँगी और अन्ततः गुफा के मुँह से चट्टान हट गई और तीनों उससे बाहर निकल आए। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हाफ़िज़ इब्ने हजर असक़लानी (रह०) ने फ़तहुलबारी में लिखा है कि शैख़ैन ने इस हदीस को केवल इब्ने उमर (रज़ि०) की रिवायत से बयान किया है और तबरानी ने दुआ के बाब (अध्याय) में इसको हज़रत अनस (रज़ि०) की रिवायत से सही सनद (प्रमाण) के साथ बयान किया है।

यह एक बहुत अहम हदीस है और इसकी तफ़सील बहुत लम्बी-चौड़ी है। यहाँ इसका मौक़ा नहीं है। यह हदीस अपने अच्छे कर्म के वास्ते से अल्लाह तआला से दुआ करने के सिलसिले की एक उसूली हदीस है। इस हदीस से मालूम हुआ कि नेक आमाल में सबसे बढ़कर नेक अमल माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना है।

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक उम्र और रोज़ी को बढ़ाता है

हज़रत अनस बिन मालिक (रज़ि०) का कहना है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि जो इंसान इस बात से ख़ुश हो कि उसकी उम्र लम्बी हो और उसकी रोज़ी में बढ़ोत्तरी हो, तो उसे अपने माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना चाहिए और रिश्तेदारों के साथ सम्बन्ध बनाए रखना चाहिए। (हदीस : अहमद, बैहक़ी)

कुछ नेक परहेज़गार लोगों ने कहा है कि माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक वास्तव में अल्लाह का शुक्र अदा करना है। अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"मेरा और अपने माँ-बाप का शुक्र अदा करो।"

जब माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक किया जाएगा तो मानो उनका शुक्र अदा किया और जब उनका शुक्र अदा किया तो मानो अल्लाह का शुक्र अदा किया। अल्लाह ने वादा किया है कि जो उसका शुक्र अदा करेगा, वह उसकी रोज़ी में बढ़ोत्तरी करेगा।

"अगर तुम मेरा शुक्र अदा करोगे तो मैं तुम्हारी रोज़ी को बढ़ा दूँगा।"

आज हमारा समाज इतना ख़राब हो गया है कि बेटे शादी के बाद अपने

माँ-बाप के साथ अच्छा बर्ताव तो एक तरफ़ उनकी छोटी और ख़ास ज़रूरतों को भी पूरा करने से कतराते हैं। केवल अपनी बीवी और बच्चों के नाज़-नख़रे उठाने में लगे रहते हैं। माँ-बाप की ज़रूरतें उन्हें व्यर्थ दिखाई देने लगती हैं और बीवी के शृंगार का सामान बेहद ज़रूरी मालूम होता है। ऐसे लोगों को समझ लेना चाहिए कि न तो उनकी रोज़ी में बरकत होगी और न ही उनकी उम्र लम्बी हो पाएगी।

माँ-बाप के लिए दुआ करना वाजिब (ज़रूरी) है

अल्लाह तआला का कहना है—

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग उसके सिवा किसी की इबादत न करो, माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो। अगर तुम्हारे पास उनमें से कोई एक या दोनों बूढ़े होकर रहें तो उन्हें 'उफ़' तक न कहो, न उन्हें झिड़ककर जवाब दो, बल्कि उनसे एहतिराम के साथ बात करो और नर्मी और रहम के साथ उनके सामने झुककर रहो और दुआ किया करो कि परवदिगार! उनपर रहम कर जिस तरह इन्होंने रहमत व मुहब्बत के साथ मुझे बचपन में पाला था। तुम्हारा रब ख़ूब जानता है कि तुम्हारे दिलों में क्या है, अगर तुम परहेज़गार बनकर रहो तो वह ऐसे सब लोगों के लिए माफ़ कर देनेवाला है जो अपनी ग़लती पर सचेत होकर बन्दगी के तरीक़े की तरफ़ लौट आएँ।"

(क़ुरआन, 17 : 23)

मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब अपनी तफ़सीर मआरिफ़ुल क़ुरआन में इस आयत की तफ़्सीर बयान करते हुए लिखते हैं कि—

"माँ-बाप की ख़िदमत करने और उनकी फ़रमाँबरदारी करने के लिए किसी ख़ास समय या उम्र की क़ैद नहीं है, बल्कि हर हाल में और हर उम्र में माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना ज़रूरी है, लेकिन ज़रूरी कामों (वाजिबात) और फ़र्ज़ों को अदा करने में जो हालात आम तौर पर रुकावट बनते हैं, उन हालात में क़ुरआन मजीद का आम तरीक़ा यह है कि वह एहकाम पर अमल को आसान करने के लिए अलग-अलग पहलुओं से

ज़ेहनों की तरबियत करता है और ऐसे हालात में अहकाम को पूरा करने की पाबन्दी की और ज़्यादा ताकीद करता है।

माँ-बाप के बुढ़ापे का समय जब कि वे औलाद की ख़िदमत के मुहताज हो जाएँ, उनकी ज़िन्दगी औलाद के रहम व करम पर रह जाए उस समय अगर औलाद की तरफ़ से थोड़ी-सी बेरुख़ी भी महसूस हो तो वह उनके दिल का घाव बन जाती है। दूसरी ओर बुढ़ापे की बीमारियाँ व कमज़ोरियाँ स्वाभाविक रूप से इंसान को चिड़चिड़ा बना देती हैं। तीसरे बुढ़ापे के आख़िरी दौर में ज़ब अक़्ल व समझ भी कमज़ोर पड़ने लगती है तो उनकी ख़्वाहिशें व माँगें कुछ ऐसी भी हो जाती हैं जिनका पूरा करना औलाद के लिए कठिन हो जाता है। क़ुरआन मजीद ने इन हालात में माँ-बाप का दिल रखने और उन्हें आराम पहुँचाने के साथ इंसान को उसका बचपन याद दिलाया कि किसी समय तुम भी अपने माँ-बाप के इससे ज़्यादा मुहताज थे जितने वे आज तुम्हारे मुहताज हैं। तो जिस तरह उन्होंने अपने आराम व ख़ाहिशों को उस वक़्त तुमपर न्यौछावर किया और तुम्हारी नासमझी की बातों को प्यार के साथ सहन किया, अब जबकि उनपर मजबूरी का समय आया है तो अक़्ल व शराफ़त की माँग है कि उनके इस पिछले एहसान का बदला चुकाओ। आयत में "जिस प्रकार इन्होंने मुझे बचपन में पाला था" से इसी ओर संकेत किया गया है और उपर्युक्त आयतों में माँ-बाप के बुढ़ापे की हालत को पहुँचने के समय कुछ देखभाल सम्बन्धी नियम दिए गए हैं।

प्रथम यह कि उनको 'उफ़' भी न कहो। 'उफ़' शब्द से मुराद हर वह बात है जिससे अपनी नागवारी ज़ाहिर होती हो यहाँ तक कि उनकी बात सुनकर इस प्रकार लम्बी साँस लेना जिससे उनको बुरा मालूम हो वह भी इस 'उफ़' में सम्मिलित है। एक हदीस में हज़रत अली (रज़ि०) की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का कहना है कि तकलीफ़ पहुँचाने में उफ़ कहने से भी कम कोई दर्जा होता तो निश्चित रूप से उसकी भी चर्चा की जाती। कहने का मतलब यह है कि जिस चीज़ से माँ-बाप को कम से कम भी कष्ट पहुँचे वह भी मना है।

दूसरा हुक्म है, "और उन्हें झिड़को नहीं।" ज़ाहिर है कि झिड़कने से

भी उन्हें तकलीफ़ पहुँचेगी।

तीसरा हुक्म है— "उनसे अदब व एहतिराम से बात करो।"

पहले दो आदेश नकारात्मक पक्ष से सम्बन्धित थे जिनमें माँ-बाप को छोटी से छोटी तकलीफ़ भी पहुँचाने से रोका गया है। इस तीसरे आदेश में सकारात्मक ढंग से माँ-बाप के साथ बात-चीत का तरीक़ा सिखाया गया है कि उनसे मुहब्बत व प्यार भरे नर्म लहजे में बात की जाए। हज़रत सईद बिन मुसय्यिब (रज़ि०) ने कहा, "जिस तरह कोई ग़ुलाम अपने सख़्त मिज़ाजवाले मालिक से बात करता है।"

चौथा हुक्म— "और नर्मी और रहम के साथ उनके सामने झुककर रहो," जिसका अर्थ यह है कि उनके सामने अपने आपको विनम्र व हीन आदमी के रूप में पेश करो, जैसे ग़ुलाम आक़ा (मालिक) के सामने। आख़िर में "रहमत के साथ" शब्दों से एक तो उसे सचेत किया गया कि माँ-बाप के साथ यह मामला केवल दिखावे का न हो बल्कि दिली रहमत व इज़्ज़त की बुनियाद पर हो, दूसरे शायद इशारा इस तरफ़ भी है कि माँ-बाप की सामने तुच्छता के साथ पेश आना वास्तविक आदर की बात है, क्योंकि यह वास्तव में अपमान नहीं बल्कि इसका कारण प्रेम और दयालुता है। पाँचवाँ हुक्म— "और दुआ करो कि ऐ पालनहार इनपर दया कर" जिसका मतलब यह है कि माँ-बाप को पूरी तरह आराम पहुँचाना तो इंसान के बस की बात नहीं। हाँ, अपनी सामर्थ्य भर आराम पहुँचाने की चिन्ता के साथ उनके लिए अल्लाह तआला अपनी रहमत से उनकी सब परेशानियाँ आसान करे और तकलीफ़ों को दूर करे। इंसान के लिए यह आख़िरी हुक्म ऐसा विस्तृत और सार्वजनिक है कि माँ-बाप की मौत के बाद भी जारी है जिसके ज़रिये वह हमेशा माँ-बाप की सेवा कर सकता है।

यदि माँ-बाप मुसलमान हों तो उनके लिए रहमत की दुआ स्पष्ट है, लेकिन यदि वे मुसलमान न हों तो उनकी ज़िन्दगी में यह दुआ इस नीयत से जाइज़ होगी कि उनको सांसारिक कष्टों से मुक्ति मिले और उन्हें ईमान की नेमत हासिल हो।

एक अजीब घटना क़रतबी ने अपनी क़रीबी सनदों के साथ हज़रत जाबिर बिन अब्दुल्लाह (रज़ि०) से रिवायत की है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ और शिकायत की कि मेरे बाप ने मेरा माल ले लिया है। आपने कहा कि अपने बाप को बुलाकर

लाओ। उसी समय जिब्रील अमीन (अलै०) आए और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा कि जब इसका बाप आ जाए तो आप उससे पूछें कि वे क्या बातें हैं जो उसने दिल में कही हैं जो स्वयं उसके कानों ने भी नहीं सुनीं। अब वह आदमी अपने बाप को लेकर आया तो आप (सल्ल०) ने उसके बाप से पूछा कि क्या बात है कि आपका बेटा आपकी शिकायत करता है, क्या आप चाहते हैं कि उसका माल छीन लें? बाप ने कहा कि आप उसी से यह सवाल करें कि मैं उसकी फूफी, ख़ाला या अपने नफ़्स के अलावा कहाँ ख़र्च करता हूँ। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि "इय:" (जिसका अर्थ यह है कि बस हक़ीक़त मालूम हो गई, अब और कुछ कहने सुनने की ज़रूरत नहीं)। इसके बाद उसके बाप से पूछा कि वे बातें क्या हैं जिनको अभी तक स्वयं तुम्हारे कानों ने भी नहीं सुना। उस आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! हर मामले में अल्लाह तआला आप पर हमारा ईमान और यक़ीन बढ़ा देते हैं। (जो बात किसी ने नहीं सुनी उसकी आपको ख़बर हो गई जो एक मोजज़ा है।) फिर उसने बताया कि यह एक हक़ीक़त है कि मैंने कुछ शेर (छन्द) दिल में कहे थे जिनको मेरे कानों ने भी नहीं सुना। आप (सल्ल०) ने कहा कि वे हमें सुनाओ। उस समय उसने जो शेर (छन्द) सुनाए उनका यहाँ केवल अनुवाद पेश किया जाता है।

1. मैंने तुम्हें बचपन में ग़िज़ा (पौष्टिक आहार) दी और जवान होने के बाद भी तुम्हारी ज़िम्मेदारी उठाई, तुम्हारा खाना-पीना मेरी ही कमाई से था।

2. जब किसी रात में तुम्हें कोई बीमारी पैदा हो गई तो मैंने सारी रात तुम्हारी बीमारी के कारण जागने और बैचेनी में बिताई।

3. मानो तुम्हारी बीमारी मुझे ही लगी है तुम्हें नहीं, जिसके कारण मैं रात भर रोता रहा।

4. मेरा दिल तुम्हारी मौत से डरता रहा जबकि मैं जानता था कि मौत का एक दिन निश्चित है, पहले या पीछे नहीं हो सकता।

5. फिर जब तुम उस उम्र और उस सीमा तक पहुँच गए जिसकी मैं तमन्ना किया करता था।

6. तो तुमने मेरा बदला मुझसे सख़्ती से पेश आने और सख़्त बात करने

के रूप में दिया। मानो तुम ही मुझपर एहसान व इनाम कर रहे हो।

7. काश अगर तुमसे मेरे बाप होने का हक़ अदा नहीं हो सकता तो कम से कम ऐसा ही कर लेते जैसा एक शरीफ़ पड़ोसी किया करता है।

8. तो कम से कम मुझे पड़ोसी का हक़ तो दिया होता और ख़ुद मेरे माल में मेरे ही हक़ में कंजूसी से काम न लिया होता।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने यह बयान सुनने के बाद बेटे का गिरेबान पकड़ लिया और कहा :—

"जा, तू और तेरा माल भी सब बाप का है।" (तफ़सीर क़रतबी)

उपर्युक्त आयत में से आख़िरी आयत "तुम्हारा रब ख़ूब जानता है कि तुम्हारे दिलों में क्या है" में इस दिल की तंगी को दूर कर दिया गया है जो माँ-बाप के अदब व एहतिराम से सम्बन्धित उपर्युक्त आदेशों से औलाद के दिल में पैदा हो सकती है कि माँ-बाप के साथ हर समय रहना है, उनके और अपने हालात भी हर समय एक से नहीं होते। किसी समय ज़बान से कोई ऐसी बात निकल गई जो ऊपर बयान किए गए ख़ास आदाब के विपरीत हो तो उसपर जहन्नम की सज़ा मिलने की चेतावनी है। इस तरह गुनाह से बचना बड़ा कठिन होगा। इस आयत में इस सन्देह और उससे दिल की तंगी को दूर करने के लिए कहा गया है कि बिना किसी की बेअदबी करने के इरादे से कभी किसी परेशानी या असावधानी (ग़फ़लत) से कोई बात निकल जाए और उससे तौबा कर ले तो अल्लाह तआला दिलों का हाल जानता है कि वह बात बेअदबी या दुख देने के लिए नहीं कही थी, वह माफ़ कर देनेवाला है। " (मआरिफ़ुल क़ुरआन पृष्ठ 454-456)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०)से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि जब आदमी मर जाता है तो उसके सब आमाल (कर्म) समाप्त हो जाते हैं, लेकिन तीन चीज़ों का लाभ उसको पहुँचता रहता है।

1. सदक़-ए जारिया[1] 2. ऐसा इल्म (ज्ञान) जिससे लोग फ़ायदा उठाते हों 3. नेक औलाद जो उसके लिए दुआ करती हो।

(हदीस : मुस्लिम)

---

1. वह नेकी और भलाई का काम जिससे लोगों को बराबर लाभ पहुँचता रहे। जैसे— स्कूल-कालिज, हास्पिटल आद क़ायम करना।

इसलिए इंसान पर माँ-बाप का यह भी हक़ है कि उनकी मौत के बाद उनकी मग़फ़िरत की दुआ करता रहे।

माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का बदला दुनिया में भी मिलता है

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अपने माँ-बाप और बुज़ुर्गों की ख़िदमत और फ़रमाँबरदारी करो, तुम्हारी औलाद तुम्हारी फ़रमाँबरदार और ख़िदमत करनेवाली होगी, और तुम पाकदामनी (पवित्रता) के साथ रहो, तुम्हारी औरतें पाकदामन (पवित्र) रहेंगी। (हदीस : तबरानी)

इसका अर्थ यह है कि इस दुनिया में जो औलाद अपने माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करेगी तो बदले के तौर पर उसकी औलाद भी उसके साथ अच्छा सुलूक करेगी और उसके विपरीत जो औलाद अपने माँ-बाप की ख़िदमत व फरमाँबरदारी नहीं करेगी तो उसको भी उसी सुलूक के लिए तैयार रहना चाहिए। और अगर तुम दूसरों की औरतों पर बुरी नज़र नहीं डालोगे तो उसके बदले में तुम्हारी औरतें भी पाक दामन रहेंगी यानी दूसरों की बुरी नज़रों से बची रहेंगी।

माँ-बाप पर ख़र्च करने की अहमियत

हज़रत कअब बिन अजिरह (रज़ि०) से रिवायत है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल०) के पास से गुज़रा तो आपके सहाबा (साथी) ने उसकी चुस्ती और ताज़गी देखकर कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! यदि यह चुस्ती और ताज़गी अल्लाह के रास्ते में होती तो . . .।" अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अगर यह अपने छोटे बच्चों की रोज़ी के लिए निकला है तो इसका यह निकलना अल्लाह के रास्ते में है और अगर यह अपने बूढ़े माँ-बाप के लिए रोज़ी कमाने के लिए निकला है तो इसका निकलना अल्लाह के रास्ते में है और अगर यह अपने लिए रोज़ी कमाने के लिए निकला है ताकि अपनी इन्द्रियों (नफ़्स) को लोगों से बे-परवाह कर दे और लोगों से माँगना न पड़े तो उसकी यह मेहनत भी अल्लाह के रास्ते में है और

अगर यह घमण्ड जताने और दिखावा व नुमाइश के लिए निकला है तो फिर इसकी चुस्ती और ताज़गी और इसका यह निकलना शैतान के रास्ते में है।''

(हदीस : तबरानी)

इस हदीस के एक टुकड़े में तफ़्सील से यह बात कही गई है कि जो कोई अपने माँ-बाप के लिए रोज़ी कमाने के लिए निकले ताकि उनको आराम पहुँचा सके तो उसकी यह मेहनत अल्लाह के रास्ते में होगी।

माँ-बाप सो रहे हों तो उनको न जगाना अच्छा सुलूक है

माँ-बाप के साथ अच्छे सुलूक के बदले दुआ के क़बूल होने से मुताल्लिक़ पिछली उम्मत के तीन आदमियों का वाक़िआ बयान किया जा चुका है जिसमें पहले व्यक्ति ने अपने माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का ज़िक्र किया है और उसमें यह बात विशेष रूप से कही गई है कि उसने उनके आराम में व्यवधान नहीं डाला, बल्कि उनके जागने का इन्तिज़ार करता रहा। इसलिए अगर बहुत ज़्यादा ज़रूरत न हो तो ख़ाहमख़ाह उनको सोते से जगाना नहीं चाहिए। अपनी ज़रूरत हो या उनकी कोई आवश्यकता हो, दोनों ही हालतों में उनके जागने तक के लिए उन ज़रूरतों को टाल देना अच्छे सुलूक में गिना जाएगा।

माँ-बाप के पास आने के लिए इजाज़त लेनी चाहिए

क़ुरआन में अल्लाह तआला का हुक्म है—

''ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अपने घरों के अलावा दूसरे घरों में दाख़िल न हुआ करो, जब तक कि घरवालों की इजाज़त न ले लो और घरवालों पर सलाम न भेज लो, यह तरीक़ा तुम्हारे लिए बेहतर है, उम्मीद है कि तुम इसका ध्यान रखोगे। फिर वहाँ किसी को न पाओ तो दाख़िल न हो जब तक कि तुमको इजाज़त न दे दी जाए। और अगर तुमसे कहा जाए कि वापिस चले जाओ, तो वापिस हो जाओ, यह तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर तरीक़ा है, और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे ख़ूब जानता है।''

(क़ुरआन, 24 : 27, 28)

एक दूसरी जगह फ़रमाया—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अनिवार्य है कि तुम्हारे लौंडी-ग़ुलाम और तुम्हारे वे बच्चे जो अभी समझदार नहीं हुए हैं, तीन वक़्तों में इजाज़त लेकर तुम्हारे पास आया करें। सुबह की नमाज़ के पहले और दोपहर को जब कि तुम कपड़े उतारकर रख देते हो और इशा की नमाज़ के बाद। ये तीन वक़्त तुम्हारे लिए परदे के वक़्त हैं। इनके बाद वे बिना इजाज़त आएँ तो न तुमपर कोई गुनाह है न उनपर। तुम्हें एक-दूसरे के पास बार-बार आना ही होता है। इस प्रकार अल्लाह तआला तुम्हारे लिए अपने अहकाम खोलकर बयान करता है, और वह सब कुछ जाननेवाला और गहरी सूझबूझ रखनेवाला है। और जब तुम्हारे बच्चे समझदार हो जाएँ तो चाहिए कि उसी तरह इजाज़त लेकर आया करें जिस तरह उनके बड़े इजाज़त लेते रहे हैं। इस प्रकार अल्लाह अपनी आयतें तुम्हारे लिए खोलता है और वह सब कुछ जाननेवाला और गहरी सूझबूझ रखनेवाला है। और जिन औरतों की जवानी समाप्त हो चुकी हो, वे निकाह की उम्मीद भी न रखती हों, वे यदि अपनी चादरें उतारकर रख दें तो उनपर कोई गुनाह नहीं, लेकिन शर्त यह है कि वे शृंगार की नुमाइश करनेवाली न हों। फिर भी वे यदि इससे बचें तो उनके हक़ में अच्छा है, और अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।"

(क़ुरआन, 24 : 58-60)

अपनी तफ़्सीर (टीका) मआरिफ़ुल क़ुरआन में मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब (रह०) इन आयतों की तफ़्सीर बयान करते हुए लिखते है :—

"अफ़सोस है कि इस्लामी शरीअत ने जितना ज़्यादा इस मामले की ओर ध्यान दिया कि क़ुरआन मजीद में इसके साफ़-साफ़ अहकाम नाज़िल हुए और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी ज़बान व अमल से इसकी बड़ी ताकीद की, उतना ही आजकल मुसलमान इससे बे-परवाह हो गए हैं। पढ़े-लिखे नेक लोग भी न इसको कोई गुनाह समझते हैं न क़ुरआन की हिदायत के मुताबिक़ अमल करने की फ़िक्र करते हैं। दुनिया की दूसरी

सभ्य जातियों ने इसको स्वीकार करके अपने समाज का सुधार कर लिया, लेकिन मुसलमान ही इसमें सबसे पीछे दिखाई देते हैं। इस्लामी अहकाम में सबसे पहले सुस्ती इसी हुक्म में शुरू हुई। बहरहाल इजाज़त लेकर घर में दाख़िल होना क़ुरआन करीम का वह अटल आदेश है कि इसमें ज़रा-सी सुस्ती और बदलाव को भी हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) ने क़ुरआन की आयत का इनकार करने के बराबर ठहराया है। और अब तो लोगों ने सचमुच इन अहकाम को इस तरह अनदेखा कर दिया है मानो उनके निकट यह क़ुरआन के अहकाम ही नहीं हैं।

इस आयत के बयान से मालूम हुआ कि किसी दूसरे व्यक्ति के घर में जाने से पहले इजाज़त का हुक्म सबके लिए है— मर्द, औरत, महरम[1] ग़ैर-महरम[2] सब इसमें शामिल हैं। औरत किसी औरत के पास जाए या मर्द किसी मर्द के पास, सबको इजाज़त लेनी ज़रूरी है। इसी प्रकार एक आदमी यदि अपनी माँ और बहन या दूसरी महरम औरत के पास जाए तो भी इजाज़त लेनी चाहिए।

इमाम मलिक (रह०) ने अपनी लिखी हुई हदीस की किताब 'मुवत्ता' में अता बिन यसार (रज़ि०) से रिवायत किया है कि एक व्यक्ति ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा कि "क्या मैं अपनी माँ के पास जाते समय भी इजाज़त लूँ?" आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ," इजाज़त लो। " उस व्यक्ति ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं तो अपनी माँ ही के साथ घर में रहता हूँ।" आप (सल्ल०) ने कहा, "फिर भी इजाज़त लिए बिना घर में न जाओ, क्या तुम्हें यह बात पसन्द है कि अपनी माँ को नंगी देखो?" उसने कहा, "नहीं।," आप (सल्ल०) ने कहा, "इसी लिए इजाज़त माँगनी चाहिए क्योंकि हो सकता है कि वे घर में किसी ज़रूरत से सतर[3] खोले हुए हों।" (मआरिफ़ुल क़ुरआन, पृ०-386)

हज़रत अल-क़मा का कथन है कि एक व्यक्ति हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) के पास आया और उसने उनसे पूछा, "क्या मुझे अपनी माँ के पास जाने के लिए इजाज़त लेनी चाहिए?" तो उन्होंने उत्तर

---

1. महरम : जिनसे शादी अवैध है।
2. ग़ैर-महरम : जिनसे शादी वैध है।
3. सतर : वह अंग जिसे छिपाना आवश्यक है।

दिया, "क्या तुम चाहते हो कि हर समय (उचित हो या अनुचित) तुम उसको देखते रहो।" (अल-अदबुल-मुफ़रद)

हज़रत मुस्लिम बिन नज़ीर का कथन है कि एक व्यक्ति ने हज़रत हुजैफ़ा (रज़ि०) से पूछा कि "क्या मैं अपनी माँ से मुलाक़ात करने के लिए पहले इजाज़त लूँ?" तो उन्होंने उत्तर दिया कि "अगर तुम इससे पहले इजाज़त नहीं लोगे तो हो सकता है कि तुम उसको उस हालत में देख लो जिस हालत में वह किसी के सामने आना पसन्द नहीं करती है।"

(अल-अदबुल-मुफ़रद)

अल-अदबुल-मुफ़रद ही में हदीस शास्त्री इमाम बुख़ारी (रह०) ने अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) की यह रिवायत भी उद्धृत की है कि मर्द को अपने बाप, अपनी माँ, अपने भाई और अपनी बहन से मिलने के लिए पहले इजाज़त लेनी चाहिए।

कहने का मतलब यह है कि माँ-बाप, भाइयों, बहनों और दूसरे नज़दीकी व दूर के रिश्तेदारों के घरों में दाख़िल होने से पहले उनसे इजाज़त लेनी चाहिए जैसा कि क़ुरआन की ऊपर बयान की गई आयतों में हुक्म दिया गया है ताकि बेपर्दगी न हो और न ही अनुचित अवस्था में उनपर नज़र पड़े। यह बहुत ही बद-अख़लाक़ी और बे-अदबी होगी कि जब दिल चाहा मुनासिब वक़्त हो या न हो, उनके घरों में दाख़िल हो जाएँ।

घरों में दाख़िल होने या दोस्तों व क़रीबी रिश्तेदारों और माँ-बाप से मिलने की इजाज़ज लेने का सुन्नत तरीक़ा यही है कि पहले सलाम करें और फिर इजाज़त लें।

माँ-बाप के लिए उठकर स्वागत करना जाइज़ है

हज़रत आइशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) से रिवायत है, कहती हैं कि मैंने किसी को नहीं देखा जो शक्ल-सूरत, सीरत व आदत और चाल-ढाल में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ ज़्यादा मिलता-जुलता (हम-शक्ल) हो, सिवाय साहबज़ादी फ़ातिमा ज़हरा (रज़ि०) के (यानी वे इन सब चीज़ों में सबसे ज़्यादा अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से मिलती थीं।)

जब वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आतीं तो आप (प्रेम के आवेश में) खड़े होकर उनकी तरफ़ बढ़ते, उनका हाथ अपने मुबारक हाथ में लेते और (प्यार से) उनको चूमते और अपनी जगह पर उनको बिठाते,

और यही उनका नियम था। जब आप (सल्ल०) उनके यहाँ तशरीफ़ ले जाते तो वे आपके लिए खड़ी हो जातीं, आपका मुबारक हाथ अपने हाथ में ले लेतीं, उसको चूमतीं और अपनी जगह पर आपको बिठातीं।

(हदीस : अबू दाऊद, तिरमिज़ी)

इस हदीस से पता चलता है कि माँ-बाप के लिए मुहब्बत, इज़्ज़त व एहतिराम के जज़्बे से खड़ा होना, उनका हाथ और माथा चूमना जाइज़ है और ख़ुद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से साबित (सिद्ध) है। यह व्यवहार वास्तव में उनके आगे नरमी और दयालुतापूर्वक झुक जाने के समान है जिसका हुक्म क़ुरआन में दिया गया है।

माँ-बाप की मौत के बाद उनके लिए माफ़ी की दुआएँ माँगना नेकी है

माँ-बाप के हक़ों का सिलसिला उनकी मौत के बाद ख़त्म नहीं हो जाता, बल्कि औलाद पर उनकी मौत के बाद कुछ और ज़िम्मेदारियाँ आ पड़ती हैं जिनको पूरा करते रहना नेक और भली औलाद की ज़िम्मेदारी और अल्लाह की ख़ास ख़ुशनूदी और रहमत का ज़रिया है।

हज़रत अबू उसैद मलिक बिन रबीया साअदी (रज़ि०) से रिवायत है कि एक समय जब वे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित थे तो बनी सलमा के एक साहब आए और उन्होंने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मेरे माँ-बाप के मुझ पर कुछ ऐसे भी हक़ हैं जो उनके मरने के बाद मुझे अदा करने चाहिएँ?" आपने कहा : "हाँ! उनके लिए भलाई व रहमत की दुआ करते रहना, उनके लिए अल्लाह से मग़फ़िरत और बख़्शिश माँगना, उनका अगर कोई वादा किसी से हो तो उसको पूरा करना, उनके सम्बन्ध से जो रिश्ते हों उनका लिहाज़ रखना और उनका हक़ अदा करना और उनके दोस्तों का अदब व एहतिराम करना।

(हदीस : अहमद, अबू दाऊद, इब्ने माजा)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो कोई यह चाहे कि क़ब्र में अपने बाप को

आराम पहुँचाए और ख़िदमत करे तो बाप की मौत के बाद उसके भाइयों के साथ वह अच्छा बर्ताव रखे जो रखना चाहिए।

(हदीस : सहीह इब्ने हिब्बान)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "बाप की ख़िदमत और अच्छे सुलूक की एक ख़ास क़िस्म यह है कि उसके मरने के बाद उसके दोस्तों के साथ (अदब व एहतिराम) का ताल्लुक़ रखा जाए और बाप की दोस्ती व मुहब्बत का हक़ अदा किया जाए।" (हदीस : सहीह मुस्लिम)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन दीनार रिवायत करते हैं कि हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से एक बद्दू (देहाती) मक्का के रास्ते में मिला तो उन्होंने उसको सलाम किया और अपने साथ गधे पर बिठा लिया और वह पगड़ी उसको दे दी जो वह अपने सिर पर बाँधे हुए थे।

इब्ने दीनार कहते हैं कि हमने उनसे कहा, "अल्लाह आपका भला करे! ये देहाती लोग हैं, थोड़े पर राज़ी हो जाते हैं। यानी आपकी पगड़ी उसको दे देना समझ में नहीं आया।" तो हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) ने जवाब दिया कि "उसका बाप मेरे वालिद हज़रत उमर बिन अल ख़त्ताब का दोस्त था और मैंने नबी (सल्ल०) को कहते हुए सुना है कि सबसे अच्छा व्यवहार औलाद का अपने बाप के दोस्तों के साथ अच्छा बर्ताव करना है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तबरानी, बैहक़ी)

माँ-बाप की नाफ़रमानी बहुत बड़ा गुनाह है

हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से बड़े-बड़े गुनाहों के बारे में पूछा गया (कि वे कौन-कौन से गुनाह हैं) तो आपने कहा— "ख़ुदा के साथ किसी को साझी बनाना, माँ-बाप की नाफ़रमानी करना, किसी इंसान को बिना उचित कारण के क़त्ल करना और झूठी गवाही देना।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत मुग़ीरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अल्लाह तआला ने तुमपर माओं की नाफ़रमानी और लड़कियों को जिन्दा क़ब्र में दफ़्न करना हराम कर दिया है। (हदीस : बुख़ारी)

हाफ़िज़ इब्ने हजर असक़लानी (रह०) इसकी तफ़्सीर बयान करते हुए लिखते हैं कि माओं की नाफ़रमानी का विशेष रूप से इसलिए ज़िक्र किया गया है कि बापों के मुक़ाबले में माएँ शारीरिक रूप से कमज़ोर होती हैं और उनकी नाफ़रमानी करना औलाद के लिए अधिक आसान होता है।

उक़ूक़ की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि उक़ूक़ अर्थात नाफ़रमानी ज़बानी और व्यावहारिक दो प्रकार की होती है। औलाद की किसी बात से या किसी व्यवहार से माँ-बाप को तकलीफ़ पहुँचे उसकी गिनती नाफ़रमानी ही में होगी अलबत्ता माँ-बाप अगर शिर्क करनेवाले हों और वे अल्लाह व रसूल (सल्ल०) की नाफ़रमानी का हुक्म दें और औलाद उसको न माने तो यह चीज़ नाफ़रमानी में नहीं गिनी जाएगी।

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "क्या मैं तुम्हें बड़े-बड़े गुनाहों के बारे में न बताऊँ?" और यह बात आपने तीन बार कही। हमने कहा कि क्यों नहीं ऐ अल्लाह के रसूल!

आप (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह के साथ शिर्क करना, माँ-बाप की नाफ़रमानी करना। आप (सल्ल०) तकिया लगाकर आराम कर रहे थे तो सीधे हो कर बैठ गए और कहा, "और हाँ सुन लो, झूठी क़सम और झूठी गवाही," और यह बात आप (सल्ल०) बार-बार कहते रहे यहाँ तक कि हमने अपने दिलों में सोचा कि काश अब आप (सल्ल०) चुप हो जाते (अर्थात् ताकीद के लिए आप (सल्ल०) इस बात को बार-बार दुहराते रहे।) (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन आस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि बड़े अपराध ये हैं— अल्लाह के साथ शिर्क करना, माँ-बाप का हुक्म न मानना, किसी जान को नाहक़ क़त्ल करना और झूठी क़सम खाना। (हदीस : बुख़ारी)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने यमन के लोगों के लिए एक आदेश लिखवाया था और उस आदेशपत्र को हज़रत अम्र बिन हज़्म (रज़ि०) लेकर यमन गए थे। उस आदेशपत्र में नबी (सल्ल०) की निम्न शिक्षाएँ लिखी थीं :

क़ियामत के दिन अल्लाह के यहाँ बड़े गुनाह ये होंगे :

1. अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराना।
2. किसी इंसान को नाहक़ क़त्ल करना।
3. अल्लाह के रास्ते में जिहाद करते हुए पीठ दिखाना।
4. माँ-बाप की नाफ़रमानी करना।
5. पाक दामन (पवित्र) औरतों पर लांछन लगाना।
6. जादू सीखना।
7. ब्याज खाना।
8. यतीम का माल हड़पना। (हदीस: इब्ने हिब्बान)

ऊपर बयान की गई हदीसों से मालूम हुआ कि शिर्क के बाद सबसे बड़ा गुनाह माँ-बाप की नाफ़रमानी है यहाँ तक कि किसी जान को नाहक़ क़त्ल करने का दर्जा भी इसके बाद आता है। माँ-बाप की नाफ़रमानी करनेवाली औलाद के लिए यह सख़्त सज़ा मिलने की चेतावनी है। उन्हें जल्द से जल्द तौबा करके अपनी इस्लाह कर लेनी चाहिए।

माँ-बाप की तरफ़ से हज करना जाइज़ है

उस समझदार और वयस्क (बालिग़) व्यक्ति के लिए हज करना फ़र्ज़ है जो धनवान हो। इसके लिए सेहत व तन्दरुस्ती की शर्त नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति धनवान हो, लेकिन इतना कमज़ोर, बूढ़ा, अपाहिज या लगातार बीमार रहनेवाला हो कि ख़ुद हज की मेहनत सहन न कर सकता हो तो उसके लिए ख़ुद हज न करना जाइज़ है। लेकिन उसके लिए ज़रूरी है कि अपनी तरफ़ से किसी दूसरे व्यक्ति को, जो उसकी औलाद हो या कोई और, हज कराए। मर्द की तरफ़ से औरत और औरत की तरफ़ से मर्द भी हज कर सकता है।

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि हज़रत फ़ज़्ल (रज़ि०) अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के साथ ऊँट पर आप (सल्ल०) के पीछे बैठे हुए थे कि ख़सअम क़बीला की एक औरत आई। उस औरत ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हज करना बन्दों पर

अल्लाह की तरफ़ से फ़र्ज़ है, मेरे बाप ने उस फ़र्ज़ को इस अवस्था में पाया है कि वे बहुत बूढ़े हैं और सवारी पर बैठ नहीं सकते। क्या मैं उनकी तरफ़ से हज का फ़र्ज़ अदा कर सकती हूँ?" आपने उत्तर दिया, "हाँ, कर सकती हो।" यह घटना 'हिज्जतुल विदाअ' (आख़िरी हज) के अवसर पर घटित हुई थी। (हदीस: बुख़ारी)

इस हदीस से साबित हुआ कि औलाद अपने माँ-बाप की तरफ़ से हज भी कर सकती है। इमाम बुख़ारी (रह०) ने अपनी सहीह (हदीस संग्रह) में इब्ने अब्बास (रज़ि०) ही से एक दूसरी रिवायत भी उद्धृत की है कि जहीना क़बीला की एक औरत अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आई और उसने कहा, "मेरी माँ ने मन्नत मानी थी कि वह हज करेगी और हज करने से पहले ही उसका इन्तिक़ाल हो गया। क्या मैं उसकी तरफ़ से हज कर सकती हूँ?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हाँ तुम उसकी तरफ़ से हज कर सकती हो। तुम यह बताओ कि अगर तुम्हारी माँ के ज़िम्मे कुछ क़र्ज़ होता तो क्या तुम उसे चुका देतीं? अल्लाह का क़र्ज़ अदा करो, इसलिए कि अल्लाह तआला इस बात का सबसे ज़्यादा हक़दार है कि उनका क़र्ज़ (हक़) अदा किया जाए।" (हदीस: बुख़ारी)

हज़रत बरीदा असलमी (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) के पास एक औरत आई और उसने प्रश्न किया, "मेरी माँ हज किए बिना मर गई। क्या मैं उसकी तरफ़ से हज करूँ तो उसकी तरफ़ से अदा हो जाएगा?" आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ।" (हदीस : अहमद व मुस्लिम)

हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में एक आदमी ने हाज़िर होकर सवाल किया, "मेरे बाप ने इस्लाम का लागू किया हुआ फ़र्ज़ हज अदा नहीं किया था।" आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम यह बताओ कि अगर तुम्हारे बाप के ज़िम्मे कुछ क़र्ज़ होता तो क्या तुम अदा करते?" उसने उत्तर दिया। "जी हाँ।" कहा, "तो यह भी उसके ज़िम्मे क़र्ज़ है, इसे अदा करो।" (हदीस: तबरानी)

माँ-बाप को नसीहत करना और उनके मार्गदर्शन के लिए दुआ करना

माँ-बाप को नसीहत करना और उनके मार्गदर्शन के लिए दुआ करना भी उनके साथ नेकी और अच्छा सुलूक है। और इस मामले में सबसे उत्तम आदर्श हमारे सामने हज़रत इबराहीम (अलै०) का है कि उन्होंने अपने ग़ैर-मुस्लिम बाप को किस अन्दाज़ से नसीहत की।

अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और इस किताब में इबराहीम (अलै०) का क़िस्सा बयान करो। बेशक वह एक सच्चा इंसान और एक नबी था। (उन्हें ज़रा उस अवसर की याद दिलाओ) जबकि उसने अपने बाप से कहा कि 'अब्बा जान, आप क्यों उन चीज़ों की इबादत करते हैं जो न सुनती हैं, न देखती हैं और न आपका कोई काम बना सकती हैं ? अब्बाजान, मेरे पास एक ऐसा इल्म (ज्ञान) आया है जो आपके पास नहीं आया। अत: आप मेरे पीछे चलें, मैं आपको सीधा रास्ता बताऊँगा। अब्बाजान आप शैतान की बन्दगी न करें, शैतान तो रहमान (अल्लाह) का नाफ़रमान है। अब्बाजान मुझे डर है कि कहीं आप रहमान के अज़ाब में गिरफ़्तार न हो जाएँ और शैतान के साथी बनकर रहें।' बाप ने कहा : इबराहीम क्या तू मेरे उपास्यों से फिर गया है ? यदि तू न माना तो मैं तुझे पत्थरों से मार-मारकर हलाक कर दूँगा। बस तू हमेशा के लिए मुझसे अलग हो जा।"

"इबराहीम ने कहा : सलाम है आपको, मैं अपने रब से दुआ करूँगा कि वह आपको माफ़ कर दे। मेरा रब मुझपर बड़ा मेहरबान है। मैं आप लोगों को भी छोड़ता हूँ और उन हस्तियों को भी जिन्हें अन्य लोग ख़ुदा को छोड़कर पुकारा करते हैं। मैं तो अपने रब ही को पुकारूँगा, आशा है कि मैं अपने रब को पुकारकर नाकाम न रहूँगा। अत: जब वह उन लोगों से और उनके उपास्यों से —जो ख़ुदा के अतिरिक्त थे— अलग हो गया तो हमने उसको इसहाक़ और याक़ूब जैसी औलाद दी और

प्रत्येक को नबी बनाया और उनको अपनी रहमत (दयालुता) प्रदान की और उनको सच्चा यश प्रदान किया।''

(क़ुरआन, 19 : 41-50)

ऊपर बयान की गई इन आयतों की व्याख्या करते हुए क़ुरआन के टीकाकार मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब लिखते हैं—

''या अ-बति'' अरबी शब्दकोश के अनुसार यह शब्द बाप के सम्मान और प्रेम की उपाधि है। हज़रत इबराहीम (अलै०) को अल्लाह तआला ने ख़ूबियों और कमालात का बुलंद दर्जा अता किया था। उनका यह भाषण जो अपने पिता के सामने हो रहा है संयमी स्वभाव और हठ के उत्तर में उदारता का एक अनोखा भाषण है कि एक तरफ़ वे बाप को शिर्क व क़ुफ्र और खुली गुमराही में न केवल संलग्न, बल्कि उसका आवाहक देख रहे हैं, जिसको मिटाने ही के लिए हज़रत इबराहीम (अलै०) पैदा किए गए हैं, दूसरी तरफ़ बाप का अदब और बड़प्पन व मुहब्बत है। इन दोनों परस्पर विरोधी बातों को हज़रत इबराहीम (अलै०) ने किस तरह निभाया। प्रथम तो प्रत्येक वाक्य के प्रारम्भ में ''या अ-बति'' (अब्बाजान) शब्द से, जो बाप की मेहरबानी और मुहब्बत का आवाहक है, सम्बोधित किया। फिर किसी वाक्य में बाप की तरफ़ कोई शब्द ऐसा नहीं जोड़ा है जिससे उसका अपमान हो या दिल को कष्ट पहुँचे कि उसको पथभ्रष्ट या काफ़िर कहते, बल्कि पैग़म्बरी सूझ-बूझ के साथ केवल उनके बुतों की बेबसी और उनके बे-एहसास होने को ज़ाहिर किया कि उनका ध्यान ख़ुद अपने ग़लत रवैये और तौर-तरीक़े की तरफ़ हो जाए। दूसरे वाक्य में अपनी उस नेमत का इज़हार किया जो अल्लाह ने उनको नुबूवत के ज्ञानस्वरूप प्रदान की थी। तीसरे और चौथे वाक्य में उस बुरे अंजाम से डराया जो उस शिर्क और क़ुफ्र के फलस्वरूप आनेवाला था। उसपर भी बाप ने बिना किसी सोच-विचार के या यह कि बाप होने की हैसियत से वे उनके निवेदन पर कुछ नर्मी से काम लेते पूरी सख़्ती के साथ सम्बोधित किया। इबराहीम (अलै०) ने तो ''या अ-बति'' के प्यार भरे शब्द से उन्हें सम्बोधित किया था जिसका उत्तर बदले में ''या बुनै-य'' (ऐ मेरे बेटे) के शब्द से होना चाहिए था, लेकिन आज़र ने उनका नाम लेकर ''या इबराहीम '' से सम्बोधित किया। और उनको पत्थर मार-मारकर हलाक करने की धमकी दी और घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। उसका उत्तर हज़रत इबराहीम (अलै०) की तरफ़

से क्या मिलता है वह सुनने और याद रखने के योग्य है, कहा— "सलामुन अलैक" (सलाम है आपको)। यहाँ शब्द "सलाम" दो अर्थों के लिए हो सकता है। प्रथम यह कि 'सलाम मुक़ातआ' हो यानी किसी से ताल्लुक तोड़ने का सभ्यतापूर्ण और शिष्टतापूर्ण ढंग यह है कि बात का जवाब देने के बदले सलाम शब्द कहकर अलग हो जाए जैसाकि क़ुरआन मजीद ने अपने उत्तम बन्दों की विशेषता बताई है : अर्थात् जब जाहिल (अभद्र) लोग उनको अभद्रतापूर्ण रूप से सम्बोधित करते हैं तो ये उनके मुँह लगने के बजाय सलाम शब्द कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि विरोध के बावजूद भी मैं तुम्हें दुख और तकलीफ़ न पहुँचाऊँगा, और दूसरा अर्थ यह है कि यहाँ सलाम अपने जाने पहचाने अर्थ ही में हो।

(मआरिफ़ुल क़ुरआन, भाग 6, पृ० 34-35)

आगे की आयतों में बताया गया है कि हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अपने बाप से अलग होते हुए उनके लिए मग़फ़िरत की दुआ माँगने का वादा भी किया था। यह एक बेटे के दिल की तड़प थी जो चाहता था कि अपने बाप को जहन्नम के अज़ाब से बचा ले। लेकिन आज़र ने उनके सुझाव पर ध्यान न दिया और शिर्क पर ही डटा रहा। इसलिए अल्लाह तआला ने भी हज़रत इबराहीम (अलै०) को आदेश दिया कि ग़ैर-मुस्लिम बाप के लिए माफ़ी की दुआ न करो। इस आदेश के बाद हज़रत इबराहीम (अलै०) ने अपने ग़ैर-मुस्लिम बाप के लिए माफ़ी की दुआ करना छोड़ दिया।

> "और इबराहीम का अपने बाप के लिए ख़ुदा से माफ़ी चाहना केवल एक वादा था जो उसने उससे किया था, लेकिन जब उस पर यह बात खुल गई कि उसका बाप अल्लाह तआला का दुश्मन है तो उसने उससे अलग होने का एलान कर दिया।"
>
> (क़ुरआन, 9 : 114)

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) कहते हैं कि मैं अपनी माँ को इस्लाम क़बूल करने के लिए समझाता रहता था। एक दिन मैंने उनको इस्लाम के बारे में कुछ बताना चाहा तो उन्होंने मुझे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बारे में ऐसी बातें सुनाईं जिनका सुनना मुझे हरगिज़ गवारा न था। मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आया, और मैं रो रहा था। मैंने कहा, "ऐ

अल्लाह के रसूल''! मैं अपनी माँ को इस्लाम की तरफ़ बुलाता हूँ तो वे इनकार कर देती हैं। एक दिन मैंने उनको इस्लाम की दावत दी तो उन्होंने मुझे आपके बारे में ऐसी बातें सुनाईं जिनका सुनना मुझे हरगिज़ गवारा नहीं। ऐ अल्लाह के रसूल! आप अल्लाह से दुआ करें कि वह अबू हुरैरह की माँ को सीधा रास्ता दिखाए।'' अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दुआ की, ''ऐ अल्लाह, अबू हुरैरा (रज़ि०) की माँ को इस्लाम का सीधा रास्ता दिखा दे।''

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि इसके बाद मैं नबी करीम (सल्ल०) की इस दुआ की शुभ-सूचना सुनाने के लिए निकला और जब मैं अपने घर के क़रीब आया तो मैंने घर के दरवाज़े के चरचराने की आवाज़ सुनी और देखा कि दरवाज़ा बन्द है। मेरी माँ ने मेरे क़दमों की आहट सुन ली थी। बोलीं, ''अबू हुरैरा वहीं रहो।'' फिर मैंने पानी गिरने की आवाज़ सुनी।

अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि मेरी माँ ने ग़ुस्ल (स्नान) किया और अपने कपड़े पहने और जल्दी से अपनी ओढ़नी ओढ़ी, फिर दरवाज़ा खोला और कहा, ''ऐ अबू हुरैरा! मैं गवाही देती हूँ कि अल्लाह के सिवाय कोई इबादत के लायक़ नहीं है और मैं गवाही देती हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के बन्दे और रसूल हैं।''

हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं कि यह सुनते ही मैं उलटे पाँव अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के पास आया और अब मेरी आँखों में ख़ुशी व आनन्द के आँसू झलक रहे थे। मैंने कहा, ''ऐ अल्लाह के रसूल! खुशख़बरी है कि अल्लाह ने आप की दुआ क़बूल कर ली और उसने अबू हुरैरा की माँ को सीधा रास्ता दिखा दिया।'' अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने यह सुनकर अल्लाह की हम्द व सना (गुणगान) की और उसका शुक्र अदा किया। और फिर मुझसे पूछा, ''और कुछ?'' मैंने निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! अल्लाह तआला से दुआ कीजिए कि मैं और मेरी माँ मोमिनों (ईमानवालों) के प्यारे बन जाएँ और मोमिन लोग हमारे प्यारे बन जाएँ। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दुआ की, ''ऐ अल्लाह! अपने इस बन्दे (अबू हुरैरा) और इसकी माँ को मोमिनों का प्यारा बना दे और मोमिनों को उनका प्यारा बना दे!''

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि कोई मोमिन पैदा नहीं हुआ जिसने मुझसे कुछ सुना हो या मुझे देखा हो और मुझसे प्रेम न किया हो।

(हदीसः मुस्लिम, अध्याय फ़ज़ाइल, अबू हुरैरा)

माँ-बाप औलाद की जन्नत और दोज़ख़ हैं

हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) का कहना है कि एक आदमी ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से पूछा, "अल्लाह के रसूल! औलाद पर माँ-बाप का कितना हक़ है?" आप (सल्ल०) ने कहा, "वह तुम्हारी जन्नत व दोज़ख़ (स्वर्ग व नरक) हैं।" (हदीस : इब्ने माजा)

कहने का मतलब यह है कि माँ-बाप का आज्ञापालन व फ़रमाँबरदारी करके, उनके हक़ों को अदा करके और उनके साथ अच्छा सुलूक करके औलाद जन्नत को पाएगी और इसके विपरीत उनकी नाफ़रमानी करके, उनके हक़ अदा न करके और उनके साथ बुरा सुलूक करके दोज़ख़ में जाएगी।

बाप जन्नत के दरवाज़ों में सबसे बेहतर दरवाज़ा है

हज़रत अबू दरदा (रज़ि०) का कहना है कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को कहते हुए सुना कि बाप जन्नत के दरवाज़ों में से बीचवाला दरवाज़ा है, अब तुम (उसकी फ़रमाँबरदारी करके) इस दरवाज़े की सुरक्षा करो या (नाफ़रमानी करके) उसको नष्ट कर दो।

(हदीस : हाकिम, बैहक़ी)

मतलब यह है कि औलाद को बाप के आज्ञापालन व फ़रमाबरदारी पर उभारा गया है और इसके इनाम के रूप में जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनाई गई है। इसके विपरीत नाफ़रमानी के फलस्वरूप ख़ुदा के नाराज़ हो जाने और उसके अज़ाब से डराया गया है।

माँ-बाप को मेहरबान नज़रों से देखना क़बूल हो जानेवाले हज के बराबर है

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करनेवाली औलाद

जब भी रहमत (मेहरबानी) की नज़र से माँ-बाप को देखे तो हर नज़र के बदले अल्लाह तआला उसके लिए क़बूल हो जानेवाले हज का सवाब लिख देता है।" सहाबा (रज़ि०) ने पूछा, "अगरचे प्रतिदिन सौ बार देखे?" आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ! अल्लाह बहुत बड़ा है और वह बहुत ज़्यादा पाक (दोषमुक्त) है।" (हदीस : मिश्कात, बैहक़ी)

अर्थात् अल्लाह के ख़ज़ाने में कमी नहीं है और न ही कोई उसका हाथ रोकनेवाला है। वह जिसको जितना देना चाहे दे सकता है।

माँ-बाप के लिए मग़फ़िरत की दुआ करने से उनके दर्जों का बुलंद होना

हज़रत अबू हुरैरह (रज़ि०) का कहना है, "अल्लाह तआला जन्नत में नेक बन्दे का दर्जा ऊँचा कर देता है तो वह अल्लाह के दरबार में निवेदन करता है कि मेरे रब! यह दर्जा मुझे कहाँ से मिला? अल्लाह तआला फ़रमाता है कि तेरी औलाद ने तेरे लिए मग़फ़िरत की दुआ की। यह उसकी वजह से है। (हदीस : अहमद, मिश्कात)

इसतिग़फ़ार यानी गुनाहों की माफ़ी कराने की दुआ अपने लिए और अपने माँ-बाप के लिए हर नमाज़ के बाद औलाद को अपना वज़ीफ़ा (नियम) बना लेना चाहिए। ये दुआ हर नमाज़ के बाद करें—

रब्बनग़-फ़िरली व लिवालिदय-य व लिल-मुअ-मिनी-न यौ-म यक़ूमुल हिसाब।

"ऐ हमारे रब! मेरी, मेरे माँ-बाप की और सारे मोमिनों की उस दिन मग़फ़िरत फ़रमा दे जिस दिन हिसाब लिया जाएगा।"

ज़िन्दा लोगों की ओर से मरनेवालों के लिए बेहतरीन तोहफ़ा उनके लिए इसतिग़फ़ार (गुनाहों की माफ़ी माँगना) है।

माँ-बाप की तरफ़ से सदक़ा करना नेकी है

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि एक आदमी ने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी माँ का इन्तिक़ाल हो गया है और उसने सदक़ा (दान) व ख़ैरात की कोई वसीयत नहीं की है।

अगर मैं उसकी तरफ़ से सदक़ा करूँ तो क्या उसको फ़ायदा पहुँचेगा?'' आपने कहा, ''हाँ।'' (अल-अदबुल-मुफ़रद)

कई और रिवायतों से यह साबित होता है कि माँ-बाप की तरफ़ से सदक़ा व ख़ैरात करने से उसका सवाब (पुण्य) उनको मिलता है। उनके नाम से कुआँ खुदवाना, पानी का नल लगवा देना, पानी की टंकी बनवा देना या अजकल मस्जिदों व मदरसों के पानी के बिल चुका देना। और इसके अलावा जो भी सदक़ा किया जाएगा इंशाअल्लाह (अल्लाह ने चाहा तो) उसका बदला उन तक पहुँचेगा।

दूध पिलानेवाली माँ की इज़्ज़त व एहतिराम

हज़रत अबू तुफ़ैल (रज़ि०) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को देखा कि आप जअराना के स्थान पर गोश्त बाँट रहे थे उसी अवसर पर एक औरत आ गईं, यहाँ तक की हुज़ूर (सल्ल०) के पास पहुँच गईं। आप (सल्ल०) ने उनके लिए अपनी मुबारक चादर बिछा दी जिसपर वे बैठ गईं। यह सब कुछ देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने लोगों से पूछा कि ये कौन औरत हैं (जिनको अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने यह इज़्ज़त व रुत्बा दिया कि अपनी मुबारक चादर को उनके लिए बिछा दिया)। इसपर लोगों ने बताया कि (तुमको मालूम नहीं) ये आप (सल्ल०) की दूध शरीक माँ हैं, जिन्होंने आपको दूध पिलाया था। (हदीस : अबू दाऊद)

इससे मालूम होता है कि दूध शरीक माँ की भी इज़्ज़त व एहतिराम और उनके साथ भी अच्छा सुलूक करना चाहिए। दूध के रिश्ते भी ख़ानदानी रिश्तों की तरह हैं इसलिए उनके साथ वही व्यवहार किया जाएगा जो ख़ानदानी रिश्तों के साथ जाइज़ है।

नाफ़रमान औलाद जन्नत में नहीं जाएगी

हज़रत इब्ने उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि तीन लोग ऐसे होंगे जिनकी तरफ़ क़ियामत के दिन अल्लाह तआला नहीं देखेगा— (1) अपने माँ-बाप का हुक्म न माननेवाली औलाद (2) शराबी (3) एहसान करके एहसान जतानेवाला। और तीन

लोग ऐसे होंगे जो जन्नत में प्रवेश नहीं करेंगे— (1) अपने माँ-बाप का हुक्म न माननेवाली औलाद (2) बदकार (दुराचारी) व बेहद कमीना इंसान जो अपनी बीवी से बदकारी (व्यभिचार) का काम करवाए (3) मर्दों से मिलने-जुलनेवाली औरत। (हदीस : नसई, इब्ने हिब्बान, हाकिम)

इस हदीस में तीन लोगों में से एक नाफ़रमान औलाद है जिसने अपने माँ-बाप की नाफ़रमानी की। क़ियामत के दिन अल्लाह तआला न उसकी तरफ़ देखेगा और न ही उसे जन्नत में दाख़िल करेगा।

हज़रत अबू उमामा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि तीन लोग ऐसे होंगे जिनकी नेकियाँ और इबादतें अल्लाह तआला क़बूल नहीं करेगा। वे तीन लोग ये हैं — (1) माँ-बाप की नाफ़रमानी करनेवाली औलाद, (2) एहसान करके जतानेवाले, (3) तक़दीर को झुठलानेवाले। (किताबुस्सुन्नः)

माँ-बाप को गाली देना गुनाह है

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "बड़ा गुनाह यह भी है कि आदमी अपने माँ-बाप को गाली दे।" सहाबा किराम (रज़ि०) ने पूछा कि, "ऐ अल्लाह के रसूल, क्या कोई आदमी आपने माँ-बाप को गाली देगा?" आप (सल्ल०) ने कहा, "हाँ। (और वह इस तरह कि) किसी दूसरे के बाप को गाली दे तो वह पलटकर गाली देनेवाले की माँ को गाली दे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

नुबूवत के समय में सहाबा किराम (रज़ि०) को यह बात अजीब सी लगी थी कि कोई औलाद अपने माँ-बाप को गाली भी देगी, इसलिए हुज़ूर (सल्ल०) ने उसकी व्याख्या करके उनको समझाया था। लेकिन आज हमारा समाज इतना बिगड़ चुका है कि औलाद ख़ुद अपनी ज़बानों से अपने माँ-बाप को गाली दे रही है और उनको बुरे उपनामों से पुकारती है।

माँ-बाप को फिटकारनेवाला निन्दनीय है

हज़रत अली (रज़ि०) ने फ़रमाया, "कोई चीज़ ऐसी नहीं है जिसके साथ अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हमको ख़ास किया हो, सिवाय उस चीज़

के जो मेरी तलवार की म्यान में है। फिर तलवार की म्यान से एक पत्र निकाला जिसमें यह लिखा था कि जो अल्लाह के सिवाय किसी और का नाम लेकर ज़बह करे उसपर अल्लाह की फिटकार हो, जो ज़मीन की निशानी चुराए उसपर फिटकार हो, जो अपने माँ-बाप को डांटे उसपर अल्लाह की फिटकार हो, जो किसी ऐसे व्यक्ति को ठिकाना दे जिसने इस्लाम-धर्म में (अमल या अक़ीदे की दृष्टि से) नयी चीज़ निकाली हो उस पर अल्लाह की फिटकार हो।" (हदीस : अल-अदबुल-मुफ़रद, मुस्लिम)

इस हदीस में बताया गया है कि जिन लोगों पर अल्लाह की फिटकार होगी उनमें वह औलाद भी है जो अपने माँ-बाप को डाँटे। जहाँ आदेश यह हो कि उन्हें 'उफ़' तक न कहो वहाँ गाली देने और फिटकारनेवाली औलाद पर अल्लाह की फिटकार ही होनी चाहिए।

माँ-बाप को घूरकर देखना भी मना है

हज़रत आइशा (रज़ि०) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा है कि उस आदमी ने अपने बाप के साथ अच्छा सुलूक नहीं किया जिसने उनको तेज़ नज़र से देखा।

(हदीस : बैहक़ी, फ़ी-शोबिल ईमान)

मतलब यह है कि माँ-बाप को घूरकर या तेज़ नज़र से देखने से उनको तकलीफ़ पहुँचने का डर रहता है। इसलिए ऐसे व्यवहार से भी रोक दिया गया। हज़रत हसन (रज़ि०) से किसी ने पूछा कि माँ-बाप को सताने की क्या सीमा है? उन्होंने उत्तर दिया कि उनको (सेवा से और धन से) वंचित करना और उनसे मिलना-जुलना छोड़ देना और उनके चेहरे की तरफ़ तेज़ नज़र से देखना— ये सब 'उक़ूक़' अर्थात् नाफ़रमानी (अवज्ञा) है।

माँ-बाप अपनी औलाद को मुहब्बत की नज़र से देखते हैं, इसलिए उसका बदला यही होना चाहिए कि औलाद भी उनको मुहब्बत की नज़र से देखे। पहले इस सिलसिले में हदीस बयान की जा चुकी है कि नज़रे रहमत (कृपा-दृष्टि) से देखने का सवाब हज के सवाब के बराबर है।

माँ-बाप का क़त्ल करनेवाले को सख़्त अज़ाब मिलेगा

हज़रत इब्ने अब्बास (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "क़ियामत के दिन सबसे अधिक सख़्त अज़ाब (कठोर यातना) उस आदमी को मिलेगा जिसने किसी नबी को क़त्ल किया हो या नबी ने उसको क़त्ल किया हो जिसने अपने माँ-बाप में से किसी को क़त्ल किया हो, तस्वीर खींचनेवालों को और उस आलिम (विद्वान) को जिसने अपने इल्म (ज्ञान) से लाभ प्राप्त न किया हो। (हदीस : बैहक़ी)

इस हदीस में जिन लोगों के बारे में बतलाया गया है कि क़ियामत के दिन उनको सख़्त अज़ाब मिलेगा वे ये लोग होंगे :—

1. नबी को जिसने क़त्ल किया हो या नबी ने उसको क़त्ल किया हो।

(स्पष्ट रहे कि ख़ुदा का नबी किसी व्यक्ति का क़त्ल उस वक़्त तक नहीं करता जब तक वह व्यक्ति घोर पापी या बड़ा अत्याचारी और उपद्रवी न हो ऐसे ज़ालिम को मरने के बाद भी अज़ाब दिया जाएगा)

2. माँ-बाप में से किसी को क़त्ल करनेवाला।
3. तस्वीर बनानेवाला।
4. आलिम जिसने अपने इल्म से लाभ न प्राप्त किया हो।

ये सब ही लोग अभागे होंगे जिनके कर्म की दुष्टता और ख़राबी उनके बारे में इस एलान से ही ज़ाहिर है कि उनको क़ियामत के दिन सख़्त से सख़्त अज़ाब दिया जाएगा। और उनमें वह औलाद भी होगी जो अपने माँ-बाप को या उनमें से किसी एक को क़त्ल कर चुकी होगी।

हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) को नबी (सल्ल०) की दस शिक्षाएँ

हज़रत मआज़ बिन जबल (रज़ि०) ने बयान किया कि नबी (सल्ल०) ने उन्हें दस बातों की वसीयत की—

1. अल्लाह के साथ किसी को साझी मत ठहराना चाहे तुझे क़त्ल कर दिया जाए या जला दिया जाए ।
2. माँ-बाप को किसी भी हाल में न सताना। उनकी नाफ़रमानी हरगिज

न करना चाहे वे तुझे हुक्म दें कि अपने घर-बार और माल से निकल जा।

3. शराब हरगिज़ मत पीना, क्योंकि वह हर बुराई की जड़ है।
4. फ़र्ज़ नमाज़ कभी भी जान बूझकर न छोड़ना क्योंकि जिसने जान-बूझकर नमाज़ छोड़ दी अल्लाह तआला उसकी ज़िम्मेदारी से अलग हो गया (और जिसकी ज़िम्मेदारी से अल्लाह अलग हो जाए उसकी तो समझो ख़ैर ही नहीं है।)
5. गुनाह से बचते रहना, क्योंकि गुनाह की वजह से अल्लाह तआला नाराज़ होता है।
6. जिहाद के मैदान से मत भागना चाहे और लोग मारे जाएँ और तुम उनके बीच हो तो भी अपने क़दम जमाए रहना।
7. और जब ताऊन (महामारी) फैल जाए और तुम उस बस्ती में हो जहाँ ताऊन फैला है तो मौत के डर से वहाँ से न भागना, बल्कि वहीं जमे रहना।
8. अपने परिवार पर अपना अच्छा माल ख़र्च करना।
9. अदब सिखाने की वजह से अपनी लाठी तैयार रखना और बीवी-बच्चों की तरफ़ से ग़ाफ़िल होकर लाठी उठाकर मत रखना।
10. बीवी-बच्चों को अल्लाह से डराते रहना।

(हदीस : अहमद, मिश्कात)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की इन दस नसीहतों (शिक्षाओं) में से एक नसीहत यह भी है कि अपने माँ-बाप की हरगिज़ नाफ़रमानी न करना। अल्लाह की बन्दगी के बाद माँ-बाप ही का हक़ है इसलिए उनकी अहमियत भी उतनी ही अधिक है। उनकी सेवा और उनके साथ अच्छा सुलूक करने का बदला और सवाब भी उसी हिसाब से रखा गया और उनकी नाफ़रमानी और उनके साथ बुरा सुलूक करने की सज़ाएँ भी उतनी ही सख़्त हैं।

घर-बार को उनके हुक्म से छोड़ देने का मतलब यह है कि इंसान अपने आपको उनकी फ़रमाँबरदारी में इतना गुम कर दे, अपने आपको इस सीमा तक तैयार कर ले कि अगर वे उसे घरबार छोड़ने का हुक्म दें तो उस हुक्म को ख़ुशी-ख़ुशी क़बूल कर ले।

माँ-बाप को सतानेवाली औलाद को दुनिया में ही सज़ा

हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि "माँ-बाप की नाफ़रमानी और उनको सताने के अलावा सारे गुनाह ऐसे हैं जिनमें से अल्लाह तआला जिसको चाहता है माफ़ कर देता है, और माँ-बाप की नाफ़रमानी और उसपर ज़ुल्म व सितम का गुनाह ऐसा है कि इस गुनाह को करनेवाली औलाद को अल्लाह तआला मौत से पहले दुनिया ही में सज़ा देता है।" (हदीस : बैहक़ी फ़ी शोबिल ईमान)

माँ-बाप की नाफ़रमानी और उनपर ज़ुल्म करना ऐसा गुनाह है कि अल्लाह तआला उसकी सज़ा आख़िरत में जो देगा वह तो उसको मिलेगी ही, लेकिन दूसरे लोगों को आगाह करने के लिए ऐसी औलाद को दुनिया में भी सज़ा मिल जाती है। पिछले पृष्ठों में यह हदीस आ चुकी है कि जो औलाद अपने माँ-बाप के साथ जैसा सुलूक करती है, वैसा ही सुलूक उसकी औलाद उसके साथ करती है। समाज में देखा जाए तो इसकी अनगिनत मिसालें मिल जाएँगी।

नाफ़रमान औलाद के लिए एक आख़िरी अवसर

हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "बन्दे के माँ-बाप या दोनों में से एक की मौत हो जाती है इस हाल में कि वह उनकी ज़िन्दगी में उनकी नाफ़रमानी करता रहा, लेकिन अब उनकी मौत के बाद उनके लिए रहमत की दुआ करता रहता है और उनके लिए मग़फ़िरत की दुआ करता रहता है यहाँ तक कि अल्लाह तआला उसको माँ-बाप की फ़रमाँबरदारी और उनके साथ अच्छा सुलूक करनेवाली औलाद में लिख देता है।" (हदीस : बैहक़ी)

मतलब यह है कि उन लोगों के लिए जो अपने माँ-बाप की नाफ़रमानी करते रहे, उनकी ज़िन्दगी में उनको सताते रहे और अपने इन कामों की वजह से उन सज़ाओं के पात्र हैं जो अल्लाह ने उनके लिए निश्चित की हैं। मगर उनके लिए आख़िरत की असफलता और इस दुनिया में भी सज़ा से बचने का अन्तिम अवसर यह है कि अब भी वे अपने इस गुनाह के लिए अल्लाह तआला से माफ़ी माँग लें और साफ़ नीयत और सच्चे दिल से अल्लाह तआला से अपने माँ-बाप की मग़फ़िरत की दुआ करते रहें तो

हदीस के अनुसार अल्लाह ने चाहा तो वह उनका नाम नेक, भली और फ़रमाँबरदार औलाद के साथ लिख देगा और उस सज़ा से बचा लेगा जो उसके लिए निश्चित की गई थी।

सिलारहमी

'सिलारहमी' का अर्थ है रिश्तों को जोड़ना और 'क़तारहमी' का अर्थ है रिश्तों को काटना। और रहम का बहुवचन 'अरहाम' है।

क़ुरआन व सुन्नत में माँ-बाप के बाद सारे रिश्तेदारों के साथ सिलारहमी (अर्थात् रिश्ता जोड़ने) का हुक्म दिया गया है। अल्लाह तआला फ़रमाता है:

> "लोगो! अपने रब से डरो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनों से मर्द व औरत दुनिया में फैला दिए। उस ख़ुदा से डरो जिसका वास्ता देकर तुम एक-दूसरे से अपना हक़ माँगते हो, और रिश्तों व क़रीब के ताल्लुक़ात को बिगाड़ने से बचते रहो। यक़ीन जानो कि अल्लाह तुमपर निगरानी कर रहा है।" (क़ुरआन, 4 : 1)

क़ुरआन की यह आयत वास्तव में सिला-रहमी और उन सारे हक़ों की, जो इस्लाम ने निश्चित किए हैं, बुनियाद है। वारिसों और यतीमों के हक़ों को अदा करना भी एक तरह से सिला-रहमी है और उनको अदा करने में लापरवाही करना क़ता-रहमी (अर्थात् रिश्ता तोड़ने) के अन्तर्गत आता है। विरासत में भाइयों के साथ बहनों, बेटियों का भी हिस्सा निर्धारित किया गया है। लेकिन अफ़सोस है कि आज मुस्लिम-समाज में बेटियों और बहनों का वह हक़ जो अल्लाह ने विरासत में निर्धारित किया है, अदा नहीं किया जाता है और मुसलमान अपने इस अमल (व्यवहार) से अपने फ़र्ज़ को पूरा करने में न केवल लापरवाही कर रहे हैं, बल्कि रिश्ते-नातों को काट भी रहे हैं और जिसके वबाल के फलस्वरूप उनकी रोज़ी से बरकत ख़त्म हो गई है। उनकी उम्रें कम हो गई हैं और उनके बीच मुहब्बत व मेहरबानी के बजाय वैर व दुश्मनी, नफ़रत और एक दूसरे की मुख़ालिफ़त है। मुस्लिम समाज उसूलों से हट कर छिन्न-भिन्न हो रहा है और यह भूल गया है कि अल्लाह उनके हर अमल को देख रहा है।

क़ुरआन में एक दूसरी जगह अल्लाह तआला ने कहा है—

"जो लोग अल्लाह के अहद (प्रतिज्ञा) को उसके बांधने के बाद तोड़ते हैं और जिस चीज़ को अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है उसको काटते हैं और ज़मीन में फ़साद मचाते हैं यही लोग हैं जो असफल होनेवाले हैं। (क़ुरआन, 2 : 27)

क़ुरआन के एक प्रसिद्ध टीकाकार मौलाना अमीन अहसन साहब 'इस्लाही' (रह०) इस आयत की तफ़्सीर बयान करते हुए लिखते हैं—

"और उस चीज़ को काटते हैं जिसको अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है। हमारी समझ से इससे मुराद ख़ून के रिश्तों और दूसरे क़रीबी रिश्तों का काटना है। अल्लाह तआला से किए हुए वादे तोड़ने के बाद दूसरा क़दम जो एक नाफ़रमान उठाता है वह ख़ून के रिश्तों के हक़ों से लापरवाही या उनको इंसाफ़ के साथ अदा न करना है। चूँकि सारी भलाई और सुधार और सारे रहन-सहन और समाज की बुनियाद इस्लाम ने अल्लाह तआला से डरने और ख़ून के रिश्तों के एहतिराम पर रखी है, इसी वजह से जो आदमी इन दोनों बन्धनों से मुक्त हुआ उसका हर क़दम अवश्य ज़मीन में बिगाड़ पैदा करनेवाला होगा। अत: यहाँ भी अल्लाह तआला के अहद (प्रतिज्ञा) को तोड़ने और ख़ून के रिश्तों को काटने का निश्चित परिणाम "और ज़मीन में बिगाड़ फैलाते हैं" बयान किया गया है।"

(तदब्बुर क़ुरआन, भाग 1, पृ० 143)

अल्लाह के साथ जो वादा किया गया है उसे तोड़ने से समाज में बिगाड़ शुरू होता है, अर्थात् अल्लाह के हक़ अदा करने में ढील बरतने से और ख़ून के रिश्तों को काटने यानी बन्दों के हक़ों को अदा न करने से। और आज ये दोनों ही प्रकार के बिगाड़ समाज में पाए जाते हैं। और अगर इसको विस्तृत किया जाए तो ज़मीन में बिगाड़ का कारण यही दोनों चीज़ें हैं। अल्लाह से किए हुए वादों से ग़फ़लत, इनकार, बग़ावत और सिला-रहमी के अहकाम को तोड़ना। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी शामिल हैं जिनके कारण क़ौमें और देश आपस में संघर्षरत् हैं।

क़ुरआन में एक दूसरे स्थान पर अल्लाह तआला ने कहा है—

"अब क्या तुम लोगों से इसके सिवा कुछ और उम्मीद की जा

सकती है कि अगर तुम उलटे मुँह फिर गए तो ज़मीन में फिर बिगाड़ फैलाओगे और आपस में एक-दूसरे के गले काटोगे?''

(क़ुरआन, 47 : 22)

एक बड़े आलिम इस आयत का मतलब समझाते हुए लिखते हैं कि—

''यह आयत इस बात को स्पष्ट करती है कि इस्लाम में रिश्ता तोड़ना हराम है। दूसरी तरफ़ सकारात्मक ढंग से भी क़ुरआन मजीद में विभिन्न स्थानों पर रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करने को बड़ी नेकियों में गिना गया है और रिश्तों को जोड़ने का हुक्म दिया गया है। (उदाहरणार्थ देखें क़ुरआन, 2 : 83, 177, 4 : 8, 36, 16 : 90, 17 : 26 और 24 : 22) रहम का शब्द अरबी भाषा में निकटता और रिश्तेदारी के लिए संकेत के रूप में प्रयुक्त होता है। एक आदमी के अनेक रिश्तेदार चाहे वे दूर के हों या क़रीब के, उसी के 'ज़विल अरहाम' (क़रीबवाले) हैं। जिससे जितना ज़्यादा क़रीब का रिश्ता हो उसका हक़ आदमी पर उतना ही ज़्यादा है और उससे रिश्ता तोड़ना उतना ही बड़ा गुनाह है। सिला-रहमी यह है कि अपने रिश्तेदार के साथ जो नेकी करना भी आदमी के बस में हो उससे इनकार न करे और क़ता-रहमी यह है कि आदमी उसके साथ बुरा सुलूक करे, या जो भलाई करना उसके लिए सम्भव हो उससे जान-बूझकर कतराए।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन भाग-5, पृ० 27)

अल्लाह तआला एक और जगह फ़रमाता है :—

''तुममें से जो लोग ख़ुशहाल और हैसियतवाले हैं वे इस बात की क़सम न खा बैठें कि अपने रिश्तेदारों, ग़रीबों और अल्लाह की राह में हिजरत करनेवालों की मदद न करेंगे। उन्हें माफ़ कर देना चाहिए और (उनकी ग़लतियों को) अनदेखा कर देना चाहिए। क्या तुम नहीं चाहते कि अल्लाह तुम्हें माफ़ करे? अल्लाह की सिफ़त (गुण) यह है कि वह बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम करनेवाला है।'' (क़ुरआन, 24 : 22)

वही बड़े आलिम इस आयत की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि—

''हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि ऊपर बयान की गई इन (आयतों) में अल्लाह तआला ने मेरे निर्दोष होने की बात प्रकट कर दी तो हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने क़सम खा ली कि आगे वह मिसतह बिन उसासा की मदद नहीं करेंगे क्योंकि उन्होंने न रिश्तेदारी का कोई ध्यान रखा

और न उन एहसानों की ही कुछ शर्म की जो वे सारी उम्र उनपर और उनके ख़ानदान पर करते रहे थे। इसपर यह आयत उतरी और उसको सुनते ही हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) ने तुरन्त कहा, "ख़ुदा की क़सम! ज़रूर, हम चाहते हैं कि ऐ हमारे रब, तू हमारी ग़लतियों को माफ़ फ़रमाए।" अत: आपने फिर मिसतह की मदद शुरू कर दी और पहले से ज़्यादा उनपर एहसान करने लगे।" हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) की रिवायत है कि यह क़सम हज़रत अबू बक्र (रज़ि०) के अलावा कुछ और सहाबा ने भी खा ली थी कि जिन-जिन लोगों ने इस लांछन में भाग लिया उनकी वे मदद न करेंगे। इस आयत के उतरने के बाद उन सबने अपनी क़सम तोड़ दी। इस तरह वह कड़वाहट दूर हो गई जो इस फ़ितने ने फैला दी थी।"

(तफ़हीमुल क़ुरआन, भाग-3, पृ० 372)

क़ुरआन के निर्देश के अनुसार उन लोगों के साथ भी रिश्ता बनाए रखना और अच्छा सुलूक करना है जो सिला-रहमी का बदला नेकी के बदले बुराई से देते हों। जिनके व्यवहार से कष्ट पहुँचता हो इसके बाद भी एक सच्चे मुसलमान को अपने रिश्तेदारों के साथ रिश्ता बनाए रखना चाहिए। सिला-रहमी का दर्जा तो वहीं ऊँचा होता है जहाँ एक तरफ़ दुश्मनी हो, वैर हो, जलन हो, रिश्ता तोड़ने की कोशिश हो और दूसरी तरफ़ उसके जवाब में आप उनके साथ फिर भी रिश्ता बनाए रखें।

अल्लाह तआला ने कहा है—

"ख़ुदा के साथ वफ़ादारी केवल यह नहीं है कि तुम पूर्व व पश्चिम की तरफ़ मुँह कर लो, बल्कि वफ़ादारी उनकी वफ़ादारी है जो अल्लाह पर, आख़िरत के दिन पर, फ़रिश्तों पर, किताब (क़ुरआन) पर और नबियों पर सच्चे दिल से ईमान लाएँ। और अपने माल, उसकी मुहब्बत के बावजूद, ग़रीबों, यतीमों, ज़रूरतमन्दों, मिस्कीनों, यात्रियों, माँगनेवालों और गर्दनें छुड़ानेवालों पर ख़र्च करें। और नमाज़ क़ायम करें और ज़कात दें। जब वादा करें तो अपने वादे को पूरा रहनेवाले हों, विशेषकर वे लोग जो भूख-प्यास, शारीरिक कष्ट और युद्ध के समय में जमे रहनेवाले हों, यही लोग हैं जिन्होंने ईमानदारी दिखाई और यही लोग हैं जो सच्चे परहेज़गार हैं।"

(क़ुरआन, 2 : 177)

इस आयत का प्रारंभ "लैसल-बिर-र" के शब्दों से हुआ है। 'बिर' का शब्द क़ुरआन व हदीस में अधिकांश स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द

का क्या उद्देश्य है और इसके शाब्दिक अर्थ क्या हैं? मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही (रह०) इसकी व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'बिर' का मौलिक अर्थ अरबी भाषा में किसी के हक़ को पूरा करना है चाहे वह ख़ुदा का हक़ हो, माँ-बाप का हक़ हो या अल्लाह के बन्दों का हक़ हो। इन बुनियादी हक़ों के अलावा उन हक़ों का अदा करना भी इस अर्थ में शामिल है जो अनुबन्ध करने, वादा करने, शपथ लेने और क़सम खाने से पैदा होते हैं। इस शब्द की व्यापकता के कारण वे सभी नेकियाँ उसके तहत जमा हो जाती हैं जो इंसाफ़ या एहसान के अन्तर्गत आ सकती हैं। 'बिर्रुन बिवालिदैहि' उस सआदतमन्द बेटे को कहेंगे जो अपने माँ-बाप का फ़रमाँबरदार और उसके हक़ों को पूरी तरह अदा करनेवाला हो। 'बर बिल क़सम' का अर्थ है— उसने अपनी क़सम पूरी की। अल्लाह तआला के लिए जो 'बर' का विशेषण प्रयुक्त हुआ है वह इसलिए कि उसने बन्दों के जो हक़ अपने ऊपर लिए हैं या जो वादे उनसे किए हैं वह उनको एक-एक करके दुनिया व आखिरत दोनों जगह पूरे करके रहेगा। इस तफ़सील से मालूम हुआ कि हक़ व वाजिबात हों या नेकियाँ और भलाइयाँ सब उसके अर्थ में शामिल हैं। इस शब्द की इस व्यापकता के कारण हमें अनुवाद के लिए उर्दू-हिन्दी में कोई ऐसा शब्द नहीं मिल सका जो उसके पूरे अर्थ को अदा कर दे। हमने जो शब्द प्रयुक्त किया है वह हमारे निकट एक सीमा तक शब्द के मूल-तत्त्व को प्रकट करता है।

इस्लाम ने जहाँ माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने और रिश्ते को निभाने का हुक्म दिया है वहीं दूसरे दूर के और क़रीबी रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक और उनसे भी रिश्ता बनाए रखने और रुपयों-पैसों से उनकी मदद करने का भी हुक्म दिया है। ऊपर की आयत में जिन लोगों के साथ अच्छा सुलूक करने, उनके हक़ों को अदा करने और उनकी मदद करने का हुक्म दिया गया है। वे लोग ये हैं—

(1) क़रीबी रिश्तेदार

इसमें क्रमशः पहले माँ उसके बाद बाप और उसके बाद दूसरे क़रीबी रिश्तेदार हैं। नबी (सल्ल०) से पूछा गया कि सबसे बेहतर सदक़ा कौन-सा है? आप (सल्ल०) ने उत्तर देते हुए कहा, "जो एक ग़रीब आदमी अपनी मेहनत की कमाई में से अपने किसी ऐसे क़रीबी रिश्तेदार पर ख़र्च करता है जो उसके ख़िलाफ़ अपने दिल में अदावत (द्वेष) रखता है।"

(2) यतीम (अनाथ)

क़रीबी रिश्तेदारों के बाद फ़ौरन यतीमों का ज़िक्र इस्लामी समाज में उनके दर्जे व स्थान को स्पष्ट करता है कि अपने क़रीबी लोगों के बाद आदमी की पहली निगाह उन बच्चों पर पड़नी चाहिए जो अपने बाप के संरक्षण से वंचित हो चुके हैं और जिनके भरण-पोषण और शीक्षा-शिक्षा की सारी ज़िम्मेदारी समाज पर आ पड़ी हो।

(3) मिस्कीन (ग़रीब)

(4) मुसाफ़िर

मुसाफ़िर अपने सफ़र की हालत में सहयोग का पात्र होता है चाहे वैसे वह हैसियतवाला हो या बेहैसियतवाला। अगर सहयोग का पात्र होने के लिए बेहैसियत-होने की शर्त होती तो मिस्कीन (ग़रीब) के ज़िक्र के बाद उसकी अलग से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं थी।

(5) साइल (माँगनेवाले)

ये वे लोग हैं जो मदद के लिए माँग करें। ग़रीबों के बाद इनकी अलग से चर्चा करने से यह बात साफ़ हो जाती है कि जो व्यक्ति माँग करे उसके बारे में ज़्यादा खोजबीन की आवश्यकता नहीं है कि सचमुच वह ज़रूरतमंद है या नहीं। यदि वह बिना ज़रूरत माँग कर रहा है तो इसकी जवाबदेही (ज़िम्मेदारी) स्वयं उसके ऊपर अल्लाह के यहाँ है। हमारा कर्त्तव्य केवल यह है कि यदि हम सहायता (दान) दे सकते हों तो ऐसे व्यक्ति की सहायता करें और यदि असमर्थ हों तो, जैसा कि क़ुरआन और हदीस में निर्देश है, शिष्टतापूर्वक उसके सामने अपनी असमर्थता व्यक्त कर दें।

(6) गर्दनों को छुड़ाना (ग़ुलामी से मुक्ति दिलाना)

इससे मुराद यहाँ ग़ुलामों की गर्दनें हैं। इनको ग़ुलामी के फ़न्दे से मुक्त कराना और आज़ाद इंसानों के बराबर लाना इंसानियत की बहुत बड़ी ख़िदमत है। इस कारण से इस्लाम ने अपनी नेकियों में इनको भी शामिल कर लिया। अब इस ज़माने में अगरचे क़ानूनी रूप से ग़ुलामी की प्रथा समाप्त हो चुकी है और यह बात इस्लाम के मक़सद के मुताबिक़ हुई है लेकिन व्यवहारत: आज भी न जाने कितने लोग अपनी आर्थिक विवशताओं और विशेष रूप से ब्याज पर आधारित क़र्ज़ों की कुप्रथा के कारण ऐसे बन्धनों में बंधे हैं या

जेलों में बन्द हैं कि उनको यदि ग़ुलाम नहीं तो ग़ुलामों के जैसा अवश्य माना जा सकता है। ऐसे लोगों की मुक्ति और उनके गिरवी रखे हुए मकानों और खेतों को छुड़ाना भी गर्दन छुड़ाने ही के दर्जे की नेकी है।

(तदब्बुर क़ुरआन, भाग-1, पृ०, 427)

सिला-रहमी करने के लिए एक मुसलमान के लिए एक विस्तृत मैदान है। और वह उन लोगों में से जिस प्रकार के लोगों के साथ सिला-रहमी और नेक बर्ताव करेगा अल्लाह ने चाहा तो सवाब पाएगा।

अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"और रिश्तेदार को उसका हक़ दो और ग़रीब और मुसाफ़िर को उसका हक़। फ़ुज़ूलख़र्ची न करो, फ़ुज़ूलख़र्च करनेवाले लोग शैतान के भाई हैं। और शैतान अपने रब का नाशुक्रा है। अगर इनसे (अर्थात् ज़रूरतमंदों, रिश्तेदारों, ग़रीबों और मुसाफ़िरों से) तुम्हें कतराना हो इस वजह से कि अभी तुम अल्लाह की रहमत (कृपा) को जिसके, तुम उम्मीदवार हो, खोज रहे हो तो उन्हें नर्म जवाब दे दो। न तो अपना हाथ गर्दन से बांधे रखो और न उसे बिलकुल ही खुला छोड़ दो कि स्वयं लोगों की निन्दा के पात्र और बेसहारा बन कर रह जाओ।"

(क़ुरआन, 17 : 26-29)

क़ुरआन मजीद की इन उपर्युक्त आयतों में आम रिश्तेदारों के हक़ों को अदा करने का हुक्म दिया गया है कि उनके साथ सामाजिक व्यवहार, अच्छा सुलूक और सिला-रहमी का बर्ताव किया जाए। ज़रूरतमन्द हों तो उनकी आर्थिक सहायता अपनी हैसियत के अनुसार की जाए। फ़ुज़ूलख़र्ची करने से मना किया गया है और फ़ुज़ूलख़र्ची करनेवालों को शैतान का भाई कहा गया है। वह शैतान जो अपने रब का नाफ़रमान और नाशुक्रा है। अर्थात् फ़ुज़ूलख़र्ची करनेवाले भी अपने रब के नाफ़रमान और नाशुक्रे (अकृतज्ञ) हैं।

क़ुरआन की टीका 'तफ़हीमुल क़ुरआन' में इन आयतों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

"इन तीन दफ़आत (धाराओं) का आशय यह है कि आदमी अपनी कमाई और अपनी दौलत को केवल अपने तक ही सीमित न रखे, बल्कि अपनी आवश्यकताओं को संयम के साथ पूरा करने के बाद अपने रिश्तेदारों,

अपने पड़ोसियों और दूसरे ज़रूरतमन्दों के हक़ों को भी अदा करे। इजतिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी में सहयोग, हमदर्दी और हक़ पहचानने व हक़ अदा करने का प्रचलन हो। हर रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार का मददगार और हर हैसियतवाला अपने पास के मुहताज (ग़रीब) इंसान का मददगार हो। एक मुसाफ़िर जिस बस्ती में भी जाए अपने आपको मेहमाननवाज़ लोगों के बीच पाए। समाज में अधिकार के बारे में लोगों के ख़यालात कुछ इस प्रकार के हों कि हर इंसान उन सब इंसानों के हक़ों को स्वयं अपने आप पर और अपने माल पर अनुभव करे, जिनके बीच वह रहता हो। उनकी सेवा करे तो यह समझते हुए करे कि उनका हक़ अदा कर रहा है, न कि एहसान का बोझ उनपर लाद रहा है। अगर किसी की सेवा से असमर्थ हो तो उससे माफ़ी माँगे और ख़ुदा से उसका फ़ज़्ल माँगे जिससे वह ख़ुदा के बन्दों की सेवा करने के योग्य हो।''

फ़ुज़ूलख़र्ची न करे और न ही अपना हाथ बाँध ले और न ही खुला छोड़ दे। इसकी व्याख्या करते हुए तफ़हीमुल क़ुरआन के टीकाकार ने लिखा है—

''हाथ बाँधना संकेत है कंजूसी के लिए और उसे खुला छोड़ देने का मतलब है फ़ुज़ूलख़र्ची। दफ़ा 4 अर्थात् 'फ़ुज़ूलख़र्ची न करो'' के साथ दफ़ा 6 अर्थात् ''न ही अपना हाथ बाँध ले और न ही खुला छोड़ दे।'' के इस वाक्यांश को मिलाकर पढ़ने से साफ़ मालूम होता है कि इसका आशय यह है कि व्यावहारिक सन्तुलन होना चाहिए कि वे न तो कंजूस बनकर दौलत के फैलाव को रोकें और न फ़ुज़ूलख़र्च बनकर अपनी आर्थिक शक्ति को बरबाद करें। इसके विपरीत उनके अन्दर सन्तुलन की ऐसी सही सूझ-बूझ मौजूद होनी चाहिए कि वे जाइज़ ख़र्च से रुके भी न रहें और फ़ुज़ूलख़र्ची की बुराइयों में मुब्तिला भी न हों। घमण्ड व दिखावा और नुमाइश के ख़र्च, अय्याशी और बदकारी व गुनाह के ख़र्च और सारे ऐसे ख़र्च जो इंसान की वास्तविक ज़रूरतों और लाभदायक कामों में ख़र्च होने के बजाय धन को ग़लत रास्तों में बहा दें, वास्तव में ख़ुदा की नेमत की नाशुक्री हैं। जो लोग इस तरह अपनी दौलत को ख़र्च करते हैं वे शैतान के भाई हैं।''

(तफ़हीमुल क़ुरआन भाग-2 पृ०, 611)

अल्लाह तआला फ़रमाता है—

''और तुम सब अल्लाह की बन्दगी करो, उसके साथ किसी को

साझी न बनाओ, माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो, क़रीबी रिश्तेदारों और यतीमों और ग़रीबों के साथ अच्छी तरह से पेश आओ और पड़ोसी रिश्तेदारों से, अजनबी पड़ोसी से, बग़ल के साथी और मुसाफ़िर और उन लौंडी-ग़ुलामों से जो तुम्हारे अधिकार में हों एहसान का ताल्लुक़ रखो। विश्वास करो अल्लाह किसी ऐसे इंसान को पसन्द नहीं करता जो अपने आपमें घमण्डी हो और अपनी बड़ाई पर गर्व करे। और ऐसे लोग भी अल्लाह को पसन्द नहीं हैं जो कंजूसी करते हैं और दूसरों को भी कंजूसी की शिक्षा देते हैं और जो कुछ अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से उन्हें दिया है उसे छिपाते हैं। (अल्लाह की) नेमतों की नाशुक्री करनेवाले ऐसे लोगों के लिए हमने अपमानित करनेवाला अज़ाब तैयार कर रखा है। और वे लोग भी अल्लाह को नापसन्द हैं जो अपने माल केवल लोगों को दिखाने के लिए ख़र्च करते हैं और वास्तव में न अल्लाह पर ईमान रखते हैं, और न आख़िरत के दिन पर। वास्तविकता यह है कि शैतान जिसका साथी हुआ उसे बहुत ही बुरा साथ मिला।" (क़ुरआन, 4 : 36-38)

ऊपर बयान की गई आयतों में भी तौहीद के बाद माँ-बाप के हक़ों का ज़िक्र है। और उसके बाद आम रिश्तेदारों और सामान्य लोगों के हक़ों को अदा करने की बात कही गई है। क़ुरआन की इन आयतों में आठ प्रकार के लोगों के हक़ों को अदा करने का हुक्म दिया गया है जो क्रमशः इस प्रकार हैं— (1) क़रीबी रिश्तेदार (2) यतीम (3) ग़रीब (4) पड़ोसी रिश्तेदार (5) अपरिचित पड़ोसी (6) साथ उठने-बठैनेवाले (7) मुसाफ़िर (8) लौंडी-ग़ुलाम।

इस तरह के लोगों में से क़रीबी रिश्तेदार और दूसरे रिश्तेदार, यतीम और ग़रीब वाज़ेह (स्पष्ट) हैं। मुसाफ़िर की परिभाषा भी पिछले पृष्ठों में आ चुकी है। चार प्रकार के लोग यानी पड़ोसी रिश्तेदार, अपरिचित पड़ोसी, साथी और लौंडी-ग़ुलाम की क्रमशः थोड़ी व्याख्या की आवश्यकता है। मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहब (रह०) ने इनकी इस तरह की व्याख्या की है—

पड़ोसी का हक़

चौथे नम्बर पर कहा गया है "वल-जारिज़िल-क़ुर्बा" और पाँचवे नम्बर पर "वल्जारिल-जुनुब", जार का अर्थ पड़ोसी के हैं। इस आयत में उसकी दो क़िस्में बयान की गई हैं — एक 'जारिज़िल क़ुर्बा' दूसरे 'जारिल-जुनुब।' इन दो क़िस्मों की व्याख्या व वर्णन में सहाबा किराम (रज़ि०) के अनेक कथन हैं।

आम तौर पर टीकाकारों ने कहा है कि 'जारिज़िल क़ुर्बा' से मुराद वह पड़ोसी है जो तुम्हारे मकान के क़रीब रहता है। और 'जारिल जुनुब' से वह पड़ोसी मुराद है जो तुम्हारे मकान से थोड़े फ़ासले पर रहता है।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) ने कहा कि 'जारिज़िल क़ुर्बा' से वह इंसान मुराद है जो पड़ोसी भी है और रिश्तेदार भी। इस तरह इसमें दो हक़ जमा हो गए, और 'जारिल जुनुब' से मुराद वह है जो केवल पड़ोसी है रिश्तेदार नहीं। इसलिए इसका दर्जा पहले के बाद रखा गया।

कुछ टीकाकारों ने कहा है कि 'जारिज़िल क़ुर्बा' वह पड़ोसी है जो इस्लामी बिरादरी में शामिल है और मुसलमान है और 'जारिल जुनुब' से ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसी मुराद है।

क़ुरआन के शब्द इन सब अर्थों को समेटे हुए हैं और वास्तविक दृष्टि से भी दर्जे में अन्तर हो जाना औचित्यपूर्ण है और मान्य भी। पड़ोसी के रिश्तेदार या ग़ैर होने के लिहाज़ से भी और मुसलमान और ग़ैर-मुस्लिम होने के आधार पर भी। और इसपर सब इस्लामी विद्वान एक मत हैं कि पड़ोसी चाहे क़रीब हो या दूर, रिश्तेदार हो या ग़ैर, मुसलमान हो या ग़ैर-मुस्लिम, प्रत्येक स्थिति में उसका हक़ है कि सामर्थ्य भर उसकी मदद की जाए और उसका हाल-चाल मालूम किया जाए।

यद्यपि जिसका हक़ पड़ोसी के अतिरिक्त दूसरा भी है वह दूसरे पड़ोसियों से दर्जे में बढ़कर है। एक हदीस में स्वयं अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इसको स्पष्ट किया है। कहा है कि "कुछ पड़ोसी वे हैं जिनका केवल एक हक़ है, कुछ वे हैं जिनके दो हक़ हैं और कुछ वे जिनके तीन हक़ हैं। एक हक़वाला पड़ोसी वह ग़ैर-मुस्लिम है जिससे कोई रिश्तेदारी भी नहीं, दो हक़वाला पड़ोसी वह है जो पड़ोसी होने के साथ मुसलमान भी है, तीन हक़वाला पड़ोसी वह है जो पड़ोसी भी है, मुसलमान भी और

रिश्तेदार भी।''

(इब्ने कसीर)

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि जिब्रील अमीन (अलै०) हमेशा मुझे पड़ोसी की रिआयत व मदद का निर्देश करते रहे, यहाँ तक कि मुझे यह आभास होने लगा कि शायद पड़ोसी को भी रिश्तेदारों की तरह विरासत में शरीक कर दिया जाएगा। (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

साथियों के हक़

छठे नम्बर में कहा, ''वस्साहिबि बिल्जुनुब'' इसके शाब्दिक अर्थ ''एक साथ बैठनेवाले साथी'' के हैं जिसमें मुसाफ़िर साथी भी शामिल है जो रेल में, जहाज़ में, बस में, गाड़ी में आपके बराबर बैठा हो, और वह व्यक्ति भी दाख़िल है जो किसी आम सभा में आपके बराबर बैठा हो।''

इस्लामी शरीअत ने जिस तरह निकट व दूर के स्थायी पड़ोसियों के हक़ ज़रूरी ठहराए उसी तरह उस व्यक्ति का भी हक़ ज़रूरी ठहरा दिया जो थोड़ी देर के लिए किसी सभा या यात्रा में आपके बराबर बैठा हो। इसमें मुसलमान व ग़ैर-मुस्लिम और रिश्तेदार व ग़ैर-रिश्तेदार सब बराबर हैं। सबके साथ अच्छे बर्ताव का निर्देश दिया गया है जिसका छोटे-से-छोटा दर्जा यह है कि आपकी किसी बात व व्यवहार से आपके पड़ोसी को कष्ट न पहुँचे, कोई बात-चीत ऐसी न करें जिससे उसका दिल दुखी हो, कोई काम ऐसा न करें जिससे उसको तकलीफ़ हो, मिसाल के तौर सिगरेट पीकर उसका धुआँ उसके मुँह की तरफ़ न छोड़ें, पान खाकर पीक उसकी तरफ़ न डालें। इस तरह न बैठें जिससे उसकी जगह कम हो जाए।

क़ुरआन मजीद के इस निर्देश पर लोग अमल करने लगें तो रेलवे के मुसाफ़िरों के सारे झगड़े समाप्त हो जाएँ। हर व्यक्ति इसपर ध्यान दे कि मुझे केवल एक आदमी की जगह का हक़ है, उससे अधिक जगह घेरने का हक़ नहीं। दूसरा कोई अगर क़रीब बैठा है तो उस रेल में उसका भी उतना ही हक़ हैं जितना मेरा है।

कुछ टीकाकारों ने कहा कि ''साहिबि बिल-जुनुब'' में हर वह व्यक्ति शामिल है जो किसी काम और किसी पेशे में आपका साझी है। उद्योग-व्यापार व मज़दूरी में, दफ़्तर की नौकरी में, यात्रा में या किसी भी अन्य जगह।

(रूहुल-मआनी)

राहगीर का हक़

सातवें नम्बर में कहा गया "वबनुस्सबील" यानी राहगीर, इससे मुराद वह व्यक्ति है जो यात्रा के दौरान आप के पास आ जाए या आपका मेहमान हो जाए। चूँकि इस अपरिचित व्यक्ति का कोई सम्बन्धी यहाँ नहीं है, तो क़ुरआन ने इस्लामी बल्कि इंसानी रिश्ते का ख़याल करके उसका हक़ भी आप पर अनिवार्य कर दिया कि अपनी सामर्थ्य व प्रयास भर उसके साथ अच्छा सुलूक करें।

ग़ुलाम, बांदी और सेवकों का हक़

आठवें नम्बर में कहा गया "व मा म-ल-कत ऐमानुकुम" जिससे मुराद अधीनस्थ ग़ुलाम और बाँदियाँ हैं, उनका भी यह हक़ अनिवार्य कर दिया गया कि हम उनके साथ अच्छा सुलूक करें। अपनी हैसियत के अनुसार खिलाने और पिलाने पहनाने में कंजूसी न करें और न उनकी ताक़त से ज़्यादा काम उनपर डालें।

अगरचे आयत का स्पष्ट संकेत अधीनस्थों, ग़ुलामों और बांदियों की ओर है, लेकिन विभिन्न कारणों और नबी (सल्ल०) के कथन के आधार पर ये अहकाम नौकरों और कर्मचारियों पर भी लागू होते हैं कि इनका भी यही हक़ है कि निश्चित वेतन और खाना आदि देने में कंजूसी और देर न करें और उनकी ताक़त से ज़्यादा उनपर काम न डालें।

(मआरिफ़ुल क़ुरआन, भाग 2, पृ० 411-413)

क़ुरआन की इन आयतों में जिन चीज़ों से रोका गया है वह गर्व व घमण्ड और कृपणता व कंजूसी हैं। ये दो ऐसी अख़लाक़ी बुराइयाँ हैं जो इंसान को हर भलाई के काम से रोकती हैं। हदीस में इनके लिए कठोर क़िस्म की सज़ा का ज़िक्र है। यहाँ केवल एक-एक हदीस नक़ल की जा रही है :

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) फ़रमाते हैं, "वह व्यक्ति जहन्नम में (हमेशा के लिए) नहीं जाएगा जिसके दिल में राई के दाने के बराबर ईमान हो और जन्नत में ऐसा कोई आदमी नहीं जा सकेगा जिसके दिल में राई के दाने के बराबर भी घमण्ड हो।" (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "प्रत्येक सुबह के समय दो फ़रिश्ते नाज़िल होते हैं। उनमें से एक कहता है कि ऐ अल्लाह! भलाई के रास्ते में ख़र्च करनेवाले को अच्छा बदला प्रदान कर और दूसरा कहता है कि ऐ अल्लाह! कंजूस को (माल-दौलत की) तबाही से क़रीब कर दे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

सिला-रहमी के बारे में बहुत ही व्यापक आयत सूरा नह्ल (16) में नाज़िल हुई है और जो जुमा के ख़ुत्बे में लगातार पढ़ी जा रही है। वह आयत यह है :—

"अल्लाह इंसाफ़ और एहसान और सिला-रहमी का हुक्म देता है।" (क़ुरआन, 16 : 90)

इस संक्षिप्त लेकिन व्यापक आयत में अल्लाह तआला ने तीन बुनियादी बातों का आदेश दिया है जिसपर इंसानी समाज के सुधार का दारोमदार है।

तफ़हीमुल क़ुरआन में इन तीन बुनियादी बातों की व्याख्या इस तरह की गई है :

"पहली चीज़ अद्ल है जो दो स्थायी तथ्यों से बना है। एक यह कि लोगों के बीच अधिकारों में सन्तुलन और अनुपात स्थापित हो। दूसरे यह कि प्रत्येक को उसका हक़ निष्पक्ष रूप से दिया जाए। उर्दू भाषा में इस भाव को "इंसाफ़" शब्द से व्यक्त किया जाता है, मगर यह शब्द ग़लतफ़हमी पैदा करनेवाला है। इससे बेवजह यह धारणा पैदा होती है कि दो आदमियों के बीच हक़ों का बँटवारा आधा-आधा के आधार पर हो और फिर उसी से अद्ल के मानी हक़ों को बराबर-बराबर बाँटने के समझ लिए गए हैं, जो सरासर प्रकृति के विपरीत हैं। वास्तव में अद्ल जिस चीज़ का तक़ाज़ा (अपेक्षा) करता है वह सन्तुलन और अनुपात है, न कि बराबरी। कुछ हैसियतों से तो अद्ल निश्चय ही समाज में बराबरी चाहता है। मिसाल के तौर पर नागरिकता के अधिकारों में। लेकिन कुछ दूसरी हैसियतों से बराबरी बिल्कुल अद्ल के विपरित है। जैसे— माँ-बाप और सन्तान के बीच सामाजिक व नैतिक बराबरी और उच्च श्रेणी का काम करनेवालों और निम्न श्रेणी का काम करनेवालों के पारिश्रमिकों की बराबरी। अत: अल्लाह

तआला ने जिस चीज़ का आदेश दिया है वह हक़ों में बराबरी नहीं, बल्कि सन्तुलन व अनुपात है। और इस आदेश की माँग यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके नैतिक, सामाजिक आर्थिक न्यायिक और राजनैतिक व सांस्कृतिक अधिकार पूरी ईमानदारी के साथ अदा किए जाएँ।

दूसरी चीज़ एहसान है जिससे मुराद है नेकी का बर्ताव, उदारतापूर्ण व्यवहार, सहानुभूतिपूर्ण आचरण, शिष्टता, क्षमाशीलता आपस में एक-दूसरे के साथ रिआयत करना, एक-दूसरे का लिहाज़ करना, दूसरे को उसके हक़ से कुछ अधिक देना और खुद अपने हक़ से कुछ कम पर तैयार हो जाना। यह अद्ल के अतिरिक्त एक चीज़ है जिसकी अहमियत सामाजिक जीवन में अद्ल से भी अधिक है। अद्ल यदि समाज की नींव है तो एहसान उसका सौन्दर्य और उसकी पराकाष्ठा है। अद्ल यदि समाज को नागवारियों और कटुताओं से बचाता है तो एहसान उसमें ख़ुशगवारियाँ और मिठास पैदा करता है। कोई समाज केवल इस आधार पर खड़ा नहीं रह सकता कि उसका प्रत्येक व्यक्ति हर समय नाप-तौलकर देखता रहे कि उसका क्या हक़ है और उसे प्राप्त करके छोड़े और दूसरे का जितना हक़ है उसे बस उतना ही देदे। इस प्रकार एक ठण्डे और रूखे समाज में कशमकश तो न होगी लेकिन मुहब्बत और शुक्रगुज़ारी, उदारता, त्याग, सत्यनिष्ठा और दूसरों का भला चाहनेवाली मान्यताओं से वह ख़ाली रहेगा, जो वास्तव में जीवन में आनन्द व मधुरता पैदा करनेवाली और सामाजिक सौन्दर्य को बढ़ानेवाली मान्यताएँ हैं।

तीसरी चीज़ जिसका इस हदीस में आदेश दिया गया है सिला-रहमी है जो रिश्तेदारों के विषय में एहसान की एक विशेष अवस्था निर्धारित करती है। इसका अर्थ केवल यही नहीं है कि आदमी अपने रिश्तेदारों के साथ अच्छा बर्ताव करे और ख़ुशी व ग़म में उनके साथ शरीक हो और जाइज़ हद के अन्दर उनका समर्थक व सहायक बने। बल्कि इसका अर्थ यह भी है कि हैसियतवाला आदमी अपने माल पर केवल अपनी ज़ात (स्वयं) और अपने बाल-बच्चों ही के हक़ों को न समझे बल्कि अपने रिश्तेदारों के हक़ों को भी स्वीकार करे। इस्लामी शरीअत हर ख़ानदान के ख़ुशहाल व्यक्तियों को इस आदेश का ज़िम्मेदार ठहराती है कि वह अपने ख़ानदान के लोगों को भूखा-

नंगा न छोड़ें। उसकी निगाह में एक समाज की इससे बदतर कोई हालत नहीं है कि उसके अन्दर एक व्यक्ति ऐश कर रहा हो और उसके ख़ानदान में उसके अपने भाई-बन्धु रोटी-कपड़े तक के लिए मुहताज हों। इस्लामी शरीअत ख़ानदान को समाज का एक महत्वपूर्ण निर्माण-तत्त्व ठहराती है और यह उसूल पेश करती है कि हर ख़ानदान के ग़रीब व्यक्ति का पहला हक़ अपने ख़ानदान के ख़ुशहाल व्यक्तियों पर है। फिर दूसरों पर उनके हक़ों की ज़िम्मेदारी है, और प्रत्येक ख़ानदान के सम्पन्न व्यक्तियों पर पहला हक़ उनके अपने ग़रीब रिश्तेदारों का है, फिर दूसरों के हक़ों की ज़िम्मेदारी उनपर पड़ती है। यही बात है जिसको नबी (सल्ल०) ने अपनी अनेक हदीसों में तफ़सील के साथ बतलाया है। अत: कुछ हदीसों में इसकी व्याख्या की गई है कि आदमी के सर्वप्रथम हक़दार उसके माँ-बाप, उसके बीवी-बच्चे और उसके भाई-बहन हैं, फिर वे जो उसके बाद निकटतम हों और यही सिद्धान्त है जिसके आधार पर हज़रत उमर (रज़ि०) ने एक यतीम बच्चे के चचेरे भाइयों को मजबूर किया कि वे उसके पालन-पोषण का भार उठाएँ और एक दूसरे यतीम के हक़ में फ़ैसला करते हुए आपने कहा कि यदि उसका कोई दूर का रिश्तेदार भी मौजूद होता तो मैं उसपर इसका पालन-पोषण अनिवार्य कर देता।

अन्दाज़ा किया जा सकता है कि जिस समाज का हर सदस्य इस प्रकार अपने लोगों को संभाल ले उसमें आर्थिक दृष्टि से कितनी ख़ुशहाली, सामाजिक दृष्टि से कितना माधुर्य और नैतिक दृष्टि से कितनी पवित्रता व श्रेष्ठता उत्पन्न हो जाएगी। (तफ़हीमुल क़ुरआन, भाग 2, पृ० 565-566)

क़ुरआन की विभिन्न आयतों से यह स्पष्ट हो गया कि रिश्तेदारों और आम लोगों के साथ अच्छा सुलूक और सिला-रहमी करना एक आवश्यक कार्य है और समाज की भलाई और सफलता का आधार है। अब सिला-रहमी से सम्बन्धित कुछ हदीसें पेश की जा रही हैं जिससे उसका महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाएगा :

1. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अल्लाह तआला ने सारी चीज़ों को पैदा किया यहाँ तक कि जब वह उनको पैदा करके मुक्त हुआ तो ख़ून के रिश्तों ने खड़े होकर

निवेदन किया कि यह दरबार रिश्ता तोड़ने से पनाह माँगने का स्थान है। अल्लाह तआला ने कहा, हाँ, जो कोई तुझे राज़ी रखेगा और तुझे जोड़कर रखेगा मैं उससे जुड़ जाऊँगा। और मैं उस व्यक्ति से सम्बन्ध तोड़ लूँगा जो तुमको काटेगा। ख़ून के रिश्ते ने कहा, हाँ ऐसा ही होगा। अल्लाह तआला ने फ़रमाया : यही तो तुम्हारा हक़ है। फिर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने लोगों से फ़रमाया कि चाहो तो क़ुरआन की यह आयत भी पढ़ लो :

"अब क्या तुम लोगों से इसके अतिरिक्त कुछ और आशा की जा सकती है कि यदि तुम उलटे मुँह फिर गए तो ज़मीन में फ़साद पैदा करोगे और अपने नाते-रिश्ते तोड़ोगे? ऐसे लोग हैं जिनपर अल्लाह ने फिटकार की, फिर कर दिया उनको बहरा और अन्धी कर दीं उनकी आँखें।" (क़ुरआन, 47 : 22)

मतलब यह है कि ज़मीन पर बिगाड़ का कारण दूर व क़रीब के रिश्तों का बिगाड़ है। जब भी कोई समाज, कोई गिरोह, कोई क़ौम, कोई ख़ानदान या कोई व्यक्ति ईमान व इस्लाम की राह से पलायन करेगा तो उसका परिणाम निश्चय ही यही निकलेगा कि वह ज़मीन में, अपने देश में, अपनी क़ौम के अन्दर, अपने ख़ानदान और अपने रिश्तेदारों के बीच झगड़े पैदा करेगा, समाज में बिगाड़ पैदा करेगा, ख़राबियों को बढ़ाएगा और लोगों से अपने रिश्ते तोड़ेगा, सम्बन्धों को ख़राब करेगा और वातावरण की शान्ति व सुकून को तबाह व बरबाद करे देगा।

2. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) का कथन है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि रहम (यानी क़रीबी रश्तेदारों का हक़) शब्द रहमान से निकला हुआ है (यानी वह ख़ुदा की रहमत की एक शाखा है और इस कारण) अल्लाह तआला ने उससे कहा कि जो तुझे जोड़ेगा मैं उसें जोड़ूँगा और जो तुझे तोड़ेगा मैं उसको तोड़ूँगा। (हदीसः बुख़ारी)

मतलब यह है कि इंसानों के बीच जो आपसी निकटता और रिश्तेदारी क़ायम होती है उसका आधार हमदर्दी, रहम, मेहरबानी, दोस्ती व सहानुभूति है। और बन्दों के अन्दर यह रहमत (दयालुता) का गुण उस रहमान (दयालु) की ज़ात से आया है जो रहमत का मूल स्रोत है। इसलिए इसका नाम रहम रखा गया है। और इसी कारण अल्लाह तआला के निकट उसकी इतनी अहमियत है कि जो सिला-रहमी करेगा यानी निकट सम्बन्धियों, रिश्तेदारों

और सामान्य लोगों के हक़ों को अदा करेगा और उनके साथ अच्छा सुलूक करेगा तो वह अल्लाह से जुड़ जाएगा यानी अल्लाह उसको अपना बना लेगा। और अल्लाह तआला जिसको अपना बना ले तो फिर उसपर वह इतनी असीम रहमतों की बारिश करेगा, इंसान सोच भी नहीं सकता। इसके विपरीत जो क़ता-रहमी की नीति अपनाएगा अर्थात् रिश्तों को काटेगा, रिश्तेदारों के हक़ों को अदा नहीं करेगा, उनके साथ अच्छा सुलूक नहीं करेगा तो अल्लाह तआला उसको अपने से काट देगा और उससे विरक्त हो जाएगा। उस आदमी की बदक़िस्मती और बरबादी का अनुमान लगाना मुशकिल है जिससे अल्लाह तआला, जो रहमान व रहीम है, विरक्त हो जाएगा।

इस एक हदीस से अनुमान किया जा सकता है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की शिक्षाओं में सिला-रहमी की कितनी अहमियत है। और इसमें ढील बरतना कितना संगीन जुर्म और कितनी बड़ी बदनसीबी है।

3. हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जो कोई यह चाहे कि उसकी रोज़ी में बढ़ोत्तरी और कुशादगी हो और दुनिया में उसके पदचिह्न देर तक रहें (अर्थात् वह दीर्घायु हो) तो वह अपने क़रीबी रिश्तेदारों के साथ सिला-रहमी करे।"

(हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

इस हदीस से यह बात साबित होती है कि कुछ नेक आमाल (अच्छे कर्मों) का बदला इस दुनिया में भी मिलता है। रोज़ी में वृद्धि व विस्तार, उम्र में बढ़ोत्तरी क़रीबी रिश्तेदारों के साथ सिला-रहमी का एक सांसारिक प्रभाव और परिणाम है। और इसके विपरीत क़रीबी रिश्तेदारों के साथ क़ता-रहमी का निश्चित परिणाम रोज़ी में कमी, आर्थिक विपन्नता, अशान्ति, असन्तोष और उम्र में कमी है। आज की दुनिया में मुसलमान जिस तरह परेशान और बदहाल हैं और अल्लाह तआला की रहमतों और मेहरबानियों से वंचित हैं इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह हमारी ज़िन्दगियों के विविध क्षेत्रों में हमारे बुरे कर्मों का परिणाम है, लेकिन हदीसों की रौशनी में यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि हमारे अभावों, बदहालियों, परेशानियों और आर्थिक कठिनाई में बड़ा दख़ल हमारे इस जुर्म का भी है कि सिला-रहमी की तालीम व

हिदायत और उसपर अमल को हममें से अधिकांश लोगों ने एकदम भुला दिया है और इस वजह से हममें और इस्लाम को न माननेवालों में कोई अन्तर बाक़ी नहीं रहा है।

4. हज़रत जुबैर बिन मुतअम (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि क़ता रहमी करनेवाला (यानी रिश्ते और नातों को काटनेवाला) जन्नत में न जा सकेगा। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

क़ता-रहमी इतना बुरा और संगीन जुर्म है कि दुनिया में इसके करनेवाले को जो सज़ा और महरूमियाँ मिलेंगी वे तो अलग हैं, आख़िरत में अल्लाह तआला उसको जन्नत में भी दाख़िल नहीं करेगा। इस जुर्म की बुराई के साथ कोई आदमी जन्नत में क़दम नहीं रख सकेगा सिवाय इसके कि अल्लाह तआला उसको माफ़ कर दे या फिर वह अपनी सज़ा नरक में दाख़िल होकर पूरी करे। फिर अल्लाह चाहेगा तो उसको जन्नत (स्वर्ग) में दाख़िल करेगा।

5. हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) का कथन है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "वह आदमी सिला-रहमी का हक़ अदा नहीं करता जो (सिला-रहमी करनेवाले अपने क़रीबी रिश्तेदारों के साथ) बदले के रूप में सिला-रहमी करता है। सिला-रहमी का हक़ अदा करनेवाला वास्तव में वह है जो उस हालत में भी सिला-रहमी करे और क़रीबी रिश्तेदारों का हक़ अदा करे जबकि वे उसके साथ क़ता-रहमी और हक़तलफ़ी (अधिकार दमन) का बर्ताव करें। (हदीस : बुख़ारी)

इस हदीस में समाज के सुधार का एक अच्छा ढंग बताया गया है। बुराई के बदले और जवाब में बुराई की जाए तो इससे समाज में बुराई ही बढ़ती चली जाएगी। इसी लिए इस्लाम में यह तरीक़ा बताया है कि बुराई के जवाब में नेकी का बर्ताव करो। और लगातार इस अमल से एक दिन बुराई करनेवाले भी नेकी करने लगेंगे। मिसाल के तौर पर क़ता-रहमी (रिश्तों को तोड़ना) एक बुराई और अपराध है। अब अगर इसका जवाब क़ता-रहमी से ही दिया जाए तो यह अपराध और यह बुराई समाज में और अधिक बढ़ेगी। इसके विपरीत क़ता-रहमी करनेवालों के साथ यदि सिला-रहमी (रिश्ते जोड़ने) का बर्ताव किया जाएगा तो एक न एक दिन उनका सुधार होगा और समाज में सिला-रहमी को बढ़ावा मिलेगा। यही बात हदीस में कही गई है

कि रिश्ता तोड़ने और हक़तलफ़ी करनेवालों के साथ सिला-रहमी का बर्ताव करना ही वास्तव में एक बड़ा नेक काम होगा; क्योंकि इसमें इंसान अपनी इन्द्रियों (नफ़्स) को वश में करके एक नेक काम करेगा।

6. हज़रत बक्कार अपने बाप से सुनी हुई हदीस बताते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया : अल्लाह तआला जिस गुनाह को चाहता है (सज़ा के लिए) क़ियामत तक के लिए छोड़ देता है। हाँ तीन प्रकार के गुनाह ऐसे हैं जिनकी सज़ा इंसान को मौत के पहले ही भुगतनी पड़ती है।

(i) बग़ावत, सरकशी (उद्दण्डता)

(ii) माँ-बाप का हुक्म न मानना

(iii) क़ता-रहमी (क़रीबी लोगों के साथ बुरा सुलूक)

7. हज़रत अबू अय्यूब अंसारी (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि एक आदमी ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, आप मुझे ऐसा अमल (कर्म) बता दें जो मुझे जन्नत में प्रवेश करा दे और जहन्नम से मुझे दूर कर दे। नबी (सल्ल०) ने कहा : अल्लाह की इबादत और उसके साथ किसी को साझी न ठहराओ, और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो और सिला-रहमी करो।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस हदीस में जन्नत में दाख़िल होने और दोज़ख़ से बचने का जो उपाय बताया गया है उसमें चार बातों का आदेश दिया गया है—

(i) अल्लाह की इबादत और उसके साथ किसी को साझी न ठहराना। यहाँ पर यह बात साफ़ हो जानी चाहिए कि इबादत का मतलब क्या है। इबादत केवल रुकू व सजदे का नाम नहीं है, बल्कि इबादत का अर्थ यह है कि हम अपनी पूरी ज़िन्दगी अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) के आज्ञापालन व फ़रमाँबरदारी में बिताएँ। अपने हर अमल (कर्म) को अल्लाह व रसूल (सल्ल०) के आदेश की कसौटी पर कसें। हलाल (जाइज़) रोज़ी कमाना और हलाल रोज़ी अपनी औलाद और परिजनों को खिलाना भी इबादत है। यहाँ तक कि जाइज़ तरीक़े से शादी-विवाह करके दाम्पत्य जीवन बिताना भी इबादत है, मगर शर्त यह है कि इन सभी कामों में केवल अल्लाह की रज़ामन्दी व ख़ुशनूदी ही की तमन्ना हो।

(ii) अल्लाह की इबादत के ज़ाहिरी रूपों में सबसे बेहतर रूप नमाज़

है। इसलिए कहा कि नमाज़ क़ायम करो। नमाज़ क़ायम करने का मतलब यह है कि अपनी नमाज़ को ख़ूब अच्छी तरह पढ़ना। नमाज़ से पहले अच्छी तरह वुज़ू करना, नमाज़ पढ़ते समय अल्लाह का डर हो और उसके सामने गिड़गिड़ाया जाए। इसके अरकान अच्छी तरह से अदा किए जाएँ। यह तो व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक नमाज़ पढ़नेवाले को करना है। समूहिक रूप में नमाज़ क़ायम करना यह है कि उसके निज़ाम (व्यवस्था) को क़ायम करने की कोशिश करना। नमाज़ के लिए माहौल बनाना, मस्जिदें बनाना, इमामों और मुअज़्ज़िनों का इन्तिज़ाम, मस्जिदों की हिफ़ाज़त— ये सब चीज़ें नमाज़ के क़ायम करने में शामिल हैं।

(iii) ज़कात देना— यह एक ऐसा फर्ज़ है कि हर मुसलमान इसको पूरा करे तो मुसलमानों की आर्थिक समस्याएँ हल हो जाएँ। दुनिया में भी वे भलाइयों और बरकतों से फ़ायदा उठाएँ और आख़िरत में जन्नत में दाख़िल हों। नमाज़ को क़ायम करने की बात कहकर अल्लाह के हक़ों को अदा करने का हुक्म दिया गया और ज़कात देने का हुक्म देकर बन्दों के हक़ों को अदा करने की बात कही गई। ज़कात तो केवल मालदार लोगों पर फ़र्ज़ है। इसमें कुछ ख़ास लोग ही शामिल हो सकते हैं। चौथी बात कहकर उसको आम लोगों तक फैला दिया गया।

(iv) सिला-रहमी करना— यानी क़रीबी रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक़ करना। समाज में हर मुसलमान अपने मुसलमान भाई के साथ अच्छा सुलूक करे। इसमें सबसे पहले माँ-बाप हैं, उनके बाद भाई-बहन हैं और फिर उसके बाद जो ज़्यादा क़रीब के रिश्तेदार हों वे हैं। हर व्यक्ति इसपर अमल करेगा तो दुनिया ही में समाज जन्नत का नमूना बन सकता है और आख़िरत में भी इसका अच्छा इनाम मिलेगा। ये हैं वे चार चीज़ें जिनपर अमल करके सफलता मिल सकती है।

8. हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) ने कहा कि क़रीबी रिश्ता अर्श से लटका हुआ है और कहता है जिसने मुझको जोड़ा अल्लाह उससे जुड़ गया और जिसने मुझको काटा अल्लाह उससे कट गया।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मतलब यह है कि सिला-रहमी करनेवालों के साथ अल्लाह की

मदद, उसका करम, उसकी इनायत और उसकी मेहरबानियाँ होती हैं और क़ता-रहमी करनेवालों के साथ अल्लाह का ग़ज़ब (प्रकोप), उसकी सज़ा और नाराज़गी होती है।

9. हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) का कथन है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "ख़ुदा की क़सम वह मोमिन नहीं है!" पूछा गया, "कौन, ऐ अल्लाह के रसूल?" आपने फ़रमाया, "वह आदमी जिसके पड़ोसी उसकी शरारतों से बचे हुए और बे-ख़ौफ़ न हों (यानी ऐसा आदमी ईमान से वंचित है)।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

10. हज़रत आइशा (रज़ि०) और हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया कि (अल्लाह के ख़ास फ़रिश्ते) जिबरील पड़ोसी तक के बारे में मुझे (अल्लाह की तरफ़ से) लगातार वसीयत और ताकीद करते रहे यहाँ तक कि मैं सोचने लगा कि वे इसको वारिस ठहरा देंगे। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

11. हज़रत अबू शुरैह (रज़ि०) का कहना है कि मैंने अपने कानों से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का यह कथन सुना और जिस समय आप यह फ़रमा रहे थे उस समय मेरी आँखें आपको देख रही थीं। आप (सल्ल०) ने कहा, "जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसके लिए अनिवार्य है कि अपने पड़ोसी के साथ इज़्ज़त व एहतिराम का सुलूक करे और जो अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने मेहमान की इज़्ज़त करे, और जो अल्लाह और आख़िरत पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अच्छी बात बोले या फिर चुप रहे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस हदीस में अल्लाह और आख़िरत पर ईमान की तीन पहचानें बताई गई हैं। जिनके अन्दर ये न पाई जाएँ उनका ईमान कमज़ोर है :

1. पड़ोसी का एहतिराम—यानी उसके हक़ों को अदा करना, उसकी इज़्ज़त करना।
2. मेहमान की इज़्ज़त— यानी मेहमान नवाज़ी, मेहमान के साथ अच्छा बर्ताव करना।
3. ज़बान पर क़ाबू रखना— ज़बान से अच्छी बात बोलना या फिर चुप रहना।